महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६२ **अंक** : ०४
दयानन्दाब्दः १९५
विक्रम संवत्: फाल्गुन कृष्ण २०७६
कलि संवत्: ५१२०
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

फरवरी द्वितीय २०२०

अनुक्रम

०१. इस्लाम की विश्वविजय की...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-४७	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. राज्य-व्यवस्था की वैदिक प्रणाली	पं. रामगोपाल शास्त्री	१६
०५. महर्षि दयानन्द और युगान्तर	श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी	२२
०६. प्रजा के दुःख दर्द को समझने...	कन्हैयालाल आर्य	२७
०७. संस्था की ओर से...		३०
०८. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३३
०९. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

इस्लाम की विश्वविजय की साजिश : हलाल अर्थव्यवस्था

विश्व में इस्लाम की स्थापना और प्रसार के साथ, विश्व का प्रत्येक गैर-इस्लामी स्वमत स्वाभिमानी व्यक्ति अतीत में भी चिन्तित और भयाक्रान्त रहा है और वर्तमान में भी है। उसके कुछ कारण हैं-कट्टर मुसलमानों का हर अच्छे-बुरे तरीके से विश्व पर केवल इस्लाम का आधिपत्य स्थापित करने का धर्मान्ध लक्ष्य, आतंक, उन गैर-मुस्लिमों के साथ बर्बर बर्ताव, जिन्हें ये 'काफ़िर' मानते हैं। इनमें बचपन से ही ये संस्कार कूट-कूटकर ठूँस दिये गये हैं कि काफिरों के विनाश से तुमको सीधे जन्नत (स्वर्ग) मिलेगा। ये अल्लाह के काम हैं और अल्लाह खुश होकर तुम्हें जन्नत में दुनिया के सारे सुखों के साथ ७२ हूरें, खूबसूरत लड़के, शराब आदि ठाठ प्रदान करेगा। इस विचार का भयावह पक्ष यह है कि कुरान में दुनिया के प्रत्येक मुसलमान को, दुनिया के हर जायज-नाजायज तरीके से काफ़िरों के विनाश का जन्मसिद्ध अधिकार प्रदान किया गया है। जन्नत कौन नहीं पाना चाहता? इसलिए पैदा होते ही मुसलमानों में जन्नत पाने के लिए होड़ मच जाती है, चाहे उसके लिए उन्हें दुनिया को नरक ही क्यों न बनाना पड़े!! इसी कारण इस्लाम के उद्भव से लेकर आज तक १४०० साल का इस्लाम का इतिहास रक्तरंजित रहा है, परायों के रक्त से भी सना और अपनों के रक्त से भी सना, तथा असंख्य मूक पशु-पक्षियों के रक्त से भी सना। कट्टर मुसलमानों की इस राजनीति, कूटनीति, बर्बर नीति पर सप्रमाण प्रकाश डालने वाला पर्याप्त साहित्य बाजार में उपलब्ध है।

किन्तु गत दिनों विदेशी लेखकों की दो पुस्तकें बहुत चर्चा में रही हैं। उन्होंने इनके पूरे इतिहास का सूक्ष्मता से विवेचना करके इनकी प्रवृत्तियों को उजागर किया है और विश्व को सावधान किया है। वे पुस्तकें हैं-सूडान में विदेशी मामलों के विशेषज्ञ सरकारी अधिकारी डॉ. पीटर हैमण्ड द्वारा लिखित '**स्लेवरी, टैररिज़्म एण्ड इस्लाम-द हिस्टॉरिकल रूट्स एण्ड कंटम्परेरली थ्रैट**' और यूरोपीय लेखक लियोन यूरिस द्वारा लिखित '**द हज**'। उन्होंने मुसलमानों की विस्तार कूटनीति का आकलन करते हुए बताया है कि इनकी यह कूटनीति रही है कि किसी देश में जब तक ये २% तक होते हैं तो वहाँ कानूनप्रिय, अल्पसंख्यक नागरिक बनकर रहते हैं, जैसे- अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, चीन, इटली, नार्वे में रह रहे हैं। जब इनकी २-५% जनसंख्या हो जाती है, तो फिर ये वहाँ की सरकार से अपनी मान्यताओं, आस्थाओं, शरीयत कानून आदि लागू करने की माँग शुरू कर देते हैं और उसके लिए दबाव बनाने के काम करते है, जैसे- फ्रांस, फिलीपींस, स्वीडन, नीदरलैंड, टोबैगो, त्रिनिदाद, थाइलैंड में हो रहा है। जब १०% या इससे अधिक हो जाते हैं, तो अपने आधिपत्य के लिए उस देश में शिकायतें, नारेबाजी, परेशानी, असहनशीलता, आक्रोश, दंगे, तोड़-फोड़ आदि शुरू कर देते हैं, जैसे गयाना, रूस, केन्या, इजराइल में। जब २०% या इससे अधिक हो जाते हैं, तो साम्प्रदायिक हत्याएँ, सैनिक शाखाएँ, नारे-आन्दोलन आदि करने लगते हैं, जैसे-भारत, इथियोपिया में। जब ४०% या इससे अधिक हो जाते हैं, तो वहाँ आतंकी गतिविधियाँ, सामूहिक हत्याएँ करने लगते हैं, जैसे- बोस्निया, चाड, लेबनान में। जब ५१% या इससे अधिक हो जाते हैं, तो उस देश को इस्लामी देश घोषित करके उसे सौ प्रतिशत मुस्लिम बनाने के लिए हर कट्टर और क्रूरतापूर्ण गतिविधि शुरू कर देते हैं। वहाँ की सरकार गुप्त या प्रकट रूप से उनको समर्थन देने लगती है, जैसे ईरान, इराक, बांग्लादेश, पाकिस्तान, जॉर्डन, कतर, मोरक्को, सीरिया आदि। इन्हीं करतूतों को अपनाकर अब तक ये लोग विश्व के सत्तावन देशों को मुस्लिम बना चुके हैं। बहुत-से देशों में अब भी सक्रिय हैं। भारत देश के गजवा-ए-हिन्द के लिए घोषित लक्ष्य है, जिसका अर्थ है हिन्दुस्तान को फतह करके इस्लामी राष्ट्र बनाना।

१४०० वर्षों के इतिहास में मुसलमानों ने जो जिहाद, धर्मान्तरण और विश्व-विजय के तरीके अपनाये, वे स्थूल उपाय थे, जैसे तलवार के बल पर, अत्याचार-अन्याय से, आर्थिक-धार्मिक भेदभाव से, लोभ-लालच से, समझा-बहका कर, जनसंख्या विस्फोट से, छुआ-छूत से। ये

उपाय प्रायः सफल रहे, किन्तु इनकी एक सीमा रही है। अब भूमण्डलीकरण के युग में तलवार, बलात्कार आदि के उन्मुक्त प्रयोग का समय भी नहीं रह गया है। अब मुसलमानों ने आर्थिक कूटनीति के आधार पर एक बहुत ही गम्भीर एवं व्यापक विनाशकारी बौद्धिक साजिश रची हुई है, जिसका उद्देश्य है गैर-इस्लामिक समाज को मजबूर करके धर्मान्तरण द्वारा पूरे विश्व को इस्लामिक बनाना। इस साजिश का प्रयोग गत वर्षों में गैर-मुसलमानों के साथ पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफ़गानिस्तान और अन्य मुस्लिम देशों तथा अन्य मतावलम्बी देशों में किया जा चुका है, जिसका परिणाम आशातीत सफलता का रहा है। विगत में मुस्लिम देशों में जो हिन्दुओं का धर्मान्तरण और पलायन हुआ है उसका एक प्रमुख कारण यह आर्थिक कूटनीति भी रही है। इसका रहस्योद्घाटन सरदार रवि रंजन सिंह ने अपने लेखों और मीडिया माध्यमों से करके हिन्दू आदि गैर-मुस्लिम समाज को चौंका दिया है और भविष्य के लिए सावधान किया है। वह आर्थिक साजिश है-**हलाल आर्थिक कूटनीति**। (**हलाला शब्द का प्रयोग उचित नहीं है क्योंकि यह प्रयोग इस्लाम में विवाह के संदर्भ में अन्य अर्थ में होता है**)। '**हलाल**' इस एक शब्द की आड़ में इस्लाम ने विश्व के इस्लामीकरण की बहुत बड़ी पृष्ठभूमि तैयार कर दी है। इसके बाद शुरू होती है इस शब्द की आड़ में होने वाली साजिश की कहानी। किन्तु उसको बताने से पहले इस्लाम में प्रयुक्त **हलाल** आदि शब्दों के मूल अर्थ और उनके कूटनीतिक अर्थ परिवर्तन को समझना बहुत जरूरी है।

आगे वर्णित सभी शब्द अरबी भाषा के हैं, जो इस्लाम के उद्भव से पहले से ही थे और सभी मतों के लोगों द्वारा सामान्य अर्थ में प्रयुक्त किये जाते थे। इस्लाम ने उनकी परिभाषा बदल दी। यह हलाल अर्थव्यवस्था का पहला चरण था। तब से वे इस्लाम के सन्दर्भों में प्रयुक्त होकर इस्लाम के ही शब्द हो गये। पहले '**हलाल**' का केवल सामान्य अर्थ था- उचित, जायज, न्यायोचित। इस्लाम ने बना दिया- केवल इस्लाम में उचित, जायज या न्यायोचित, खाने-पीने के लिए विहित पदार्थ, जब्ह किया गया पशु-पक्षी। यह इस्लाम में मांस काटने की एक पद्धति मात्र रही है। इसके विपरीतार्थक '**हराम**' शब्द माना गया है। '**जिहाद**' का केवल अर्थ था-धर्मरक्षा के लिए संघर्ष। इस्लाम ने बना दिया- केवल इस्लाम के प्रसार और रक्षा के लिए युद्ध। यह मुसलमानों द्वारा अल्लाह के लिए किया जाने वाला कर्त्तव्य है। यह काफ़िरों अर्थात् गैर-मुसलमानों से लड़ा जाता है और तब तक लड़ा जाता रहेगा जब तक दुनिया में एक भी काफ़िर जिन्दा है। जिहाद में कुरान में काफिर का वध करने का आदेश है। '**अल्लाह**' का केवल अर्थ था- परमात्मा, ईश्वर। इस्लाम ने बना दिया- सातवें आसमान पर रहने वाला परमात्मा, खुदा। **काफ़िर** का केवल अर्थ था- नास्तिक। इस्लाम ने बना दिया-केवल अल्लाह, कुरान, मुहम्मद साहब को न मानने वाला। वह नास्तिक है।

उक्त अर्थों के आलोक में '**हलाल साजिश**' की कहानी का दूसरा चरण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शुरू होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजों का सहयोग करने वाले ब्रिटेन के अधीन देशों के प्रशासनिक अधिकारियों, पुलिस के तथा अन्य मुस्लिम लोगों ने ब्रिटिश नेताओं से निवेदन किया कि आपके राज में हमने आपका निष्ठा से सहयोग किया है, अब यहाँ के मुस्लिम हमसे बदला लेंगे, यहाँ हमारा जीना मुश्किल है। आप हमारा उपाय कीजिए। अंग्रेजों ने उनको वीजा देकर इंग्लैण्ड में बसा दिया। उन्होंने अपने रिश्ते-नातेदारों को भी वहाँ बुला लिया।

जैसी कि उनकी परम्परा है कुछ ही सालों में बाढ़ की तरह जनसंख्या बढ़कर उनकी अनेक कॉलोनियाँ बन गईं। अब उनमें भी कट्टर मुस्लिम भाव उभरा और बाहरी योजनाकार भी उनमें पहुँच गये और शुरू हो गई जन्नत पाने के लिए '**हलाल साजिश**'। जिस कुटिल नीति से अंग्रेजों ने दुनिया को हथियाया था, उसी कुटिल नीति से मुसलमानों ने अंग्रेजों को भी चकमा दे दिया। वे मूर्ख बन गये और मुस्लिमों के चंगुल में फँस गये। मुस्लिमों ने पहले माँग की कि हमें यहाँ हलाल मांस उपलब्ध नहीं होता है। उसके कारण हमारी धार्मिक भावनाएँ आहत होती हैं। हमें हलाल की दुकानें, मॉल आदि चलाने और उसका प्रमाण-पत्र जारी करने का वैधानिक अधिकार दिया जाये। अंग्रेजों ने उनको खुशी-खुशी सारे धार्मिक

अधिकार वैधानिक रूप से दे दिये जैसे भारत की सरकारों ने अल्पसंख्यकों को खुश करने-रखने के लिए अब तक पलक पाँवड़े बिछा रखे हैं। मुस्लिमों ने हलाल को प्रमाणित करने के लिए ब्रिटेन में अपनी वैधानिक सोसाइटियाँ गठित कर लीं। अब तक हलाल की माँग केवल मांस तक थी। मुसलमानों ने निश्चय किया कि प्रत्येक मुसलमान केवल हलाल प्रमाणित स्थान से मांस खरीदेगा। प्रायोजित ढंग से दूसरों को भी प्रेरित करके अपनी दुकानों में ले जाने लगे। गैर-मुसलमानों ईसाई, सिख, हिन्दू आदि के झटका मांस के लिए न कोई सुनियोजित केन्द्र था, न प्रमाणितकर्त्ता संगठन था। वे लोग भी इस कूटनीति की साजिश को नहीं समझ सके। हलाल मांस की बिक्री बढ़ गई और अंग्रेजों की या तो घट गई अथवा उनकी दुकानें उजड़ गईं, या फिर विवश होकर उनको भी मुसलमानों से हलाल प्रमाण-पत्र लेना पड़ा। अपनी कूटयोजना की सफलता से उत्साहित मुस्लिमों ने फिर आगे बढ़ते हुए घोषित कर दिया कि गैर-मुस्लिमों से प्राप्त मांस हलाल नहीं है, अत: हम ब्रिटेन के लोगों से मांस नहीं खरीदेंगे। उन्होंने मलेशिया, इंडोनेशिया देशों से मांस का आयात शुरू कर दिया। इससे इंग्लैण्ड का मांस व्यापार ठप्प हो गया। अब भारत सहित सभी देशों में मांस का वही व्यापार चल रहा है जो या तो मुसलमानों के हाथ में है या हलाल प्रमाणित है। विश्व के इस व्यापार को उन्होंने अपने हस्तगत कर लिया है। इसके दुष्परिणामों की चर्चा आगे करेंगे।

इसके बाद शुरू होती है हलाल शब्द की आड़ में रची गई अर्थव्यवस्था की साजिश की तीसरे चरण की कहानी। उसके बाद मुसलमानों ने हलाल शब्द की परिभाषा केवल मांस की सीमा से निकाल के उसको और व्यापक बना दिया और कहा कि दुनिया की हर वस्तु या तो हलाल है या हराम है। सूई से लेकर हवाई जहाज तक। जैसे-सूई, कॉपी, पेन्सिल, दवाई, चीनी, मिठाई, नमकीन, डॉक्टर, हॉस्पिटल आदि। हम केवल मुसलमानों द्वारा निर्मित और उन्हीं के द्वारा प्रमाणित हलाल की वस्तु खरीदेंगे। मुस्लिम राष्ट्रों में और मुस्लिम बहुल प्रदेशों में इसी तरह हिन्दू और गैर-मुस्लिम बर्बाद कर दिये गये। उन्हें या तो भूखों मरते मुसलमान बनना पड़ा या देश छोड़कर वहाँ से पलायन करना पड़ा। अधिकतर मुस्लिम देशों ने, विशेषरूप से खाड़ी देशों (कुवैत, अरब अमीरात, सऊदी अरब, कतर, ओमान, बहरीन) में यह कानून बना रखा है कि वे किसी भी देश से तभी कोई सामान खरीदेंगे जब उसके साथ हलाल होने का प्रमाणपत्र संलग्न होगा। अब विश्व बाजार में यदि किसी को अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो उसके लिए इस्लाम एकता और कूटनीति के कारण 'हलाल' प्रमाणपत्र लेना जरूरी हो गया है। आप दो उदाहरणों से इसकी गम्भीरता का अनुमान लगा सकते हैं। खाड़ी देशों में अपना उत्पादन बेचने के लिए स्वामी रामदेव और डाबर इंडिया को भी मुसलमानों के सामने नतमस्तक होना पड़ा है और हलाल प्रमाणपत्र लेना पड़ा है। भारत की पिछली सरकारों ने इस अर्थव्यवस्था को प्रायोजित ढंग से बढ़ावा दिया है। रेलवे, सेना आदि बृहत् सरकारी विभागों के लिए हलाल मीट ही खरीदना अनिवार्य किया हुआ था। गैर-मुस्लिमों द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला झटका मांस नहीं खरीदा जाता था। अन्त में प्रश्न रह जाता है कि हलाल प्रमाणपत्र से क्या नुकसान है? इसका उत्तर इस कूटनीति के चौथे चरण में निहित है। इस्लामी योजनाकारों ने कूटनीति के अन्तर्गत उन देशों एवं स्थानों के लिए हलाल की परिभाषा बदली हुई है जहाँ हिन्दू आदि गैर-मुस्लिम अधिक हैं। यह उनकी विवशता है। किन्तु वहाँ इनका यह निर्देश होता है कि आप धीरे-धीरे सभी कर्मचारी मुस्लिम रखेंगे। इसका भयावह परिणाम यह होगा कि गैर-मुस्लिम हिन्दू आदि बेरोजगार होते जायेंगे, उनकी दुकान, व्यापार ठप्प हो जायेगा। विवश होकर अन्तत: उनमें से बहुत से धर्मान्तरण कर लेंगे। इस तरह इस्लाम अपने लक्ष्य में बिना किसी युद्ध के सफल होता जायेगा। हलाल से प्राप्त धन में से अढ़ाई प्रतिशत धन जिहाद के लिए जाता है। जितना अधिक धन मिलेगा जिहाद उतना फले-फूलेगा। आज भी इस्लामिक गतिविधियों के लिए जकात से संकलित धन अरब देशों से आता है। एक समय ऐसा भी आशंकित है कि जो धर्मान्तरण को स्वीकार नहीं करेंगे उन्हें मुसलमानों के जिहाद का सामना करना पड़ेगा। उसमें या तो धर्मान्तरण

करना पड़ेगा या मरना होगा, जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश, ईरान, इराक, अफगानिस्तान आदि देशों में हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि हलाल अर्थव्यवस्था में सम्मिलित होकर हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध आदि गैर-मुस्लिम अपनी संस्कृति सभ्यता,धर्म, साहित्य और अपने जीवन की स्वयं सुपारी दे रहे हैं।

साजिश से बचने का उपाय- इससे बचने का एकमात्र उपाय यही है कि गैर-मुस्लिम समाज हलाल-प्रमाणित सामान न खरीदने का दृढ़ संकल्प लें और उसको खरीदने से विक्रेता को मना करें, जिससे हलाल अर्थव्यवस्था आगे न बढ़ पाये। यह कठिन नहीं है, क्योंकि विश्व में मुस्लिम सिर्फ १५-२०% हैं। यदि वे हलाल का अपना आग्रह रखेंगे तो उनका क्रय प्रतिशत इतना ही रहेगा। अन्य वर्ग ८०-८५% हैं, वे अपना आग्रह करेंगे तो उनका क्रय प्रतिशत कई गुना अधिक रहेगा। इस प्रकार उक्त साजिश असफल हो सकती है और अपना भविष्य सुरक्षित हो सकता है, किन्तु हिन्दू वर्गों की समस्या यह है कि वे न तो स्वमताग्रही होते हैं और न भावी संकट का चिन्तन करते हैं। पता नहीं, इस साजिश को भी गम्भीरता से पढ़ेंगे-समझेंगे या नहीं! कायर और कमजोर मानसिकता के लोग केवल पलायन करना जानते हैं, इसलिए हजारों वर्षों से पलायन करते आ रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे पलायन ही इनकी नियति है। चाहें तो हम दो छोटे बौद्ध देशों में घटित उदाहरणों से प्रेरणा ले सकते हैं जिन्होंने डर से स्वयं पलायन न करके आतंकियों का पलायन कराया है। म्यांमार में विराथु नामक एक बौद्ध भिक्षु के प्रयत्नों ने और श्रीलंका में सरकार ने आतंक मचाने वाले मुस्लिम आतंकवादियों और उनके समर्थकों को अपने देश से बाहर का रास्ता दिखा दिया है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

प्रवचनमाला-६१

मृत्यु सूक्त-४७

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

हम इस वेद ज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के दशम् मण्डल के १८ वें सूक्त पर चर्चा कर रहे हैं। इसका ऋषि यामायनः और इसका देवता पितृमेधः। पितृमेध का अर्थ अन्त्येष्टि से जुड़ा हुआ है। हमारे यहाँ 'मेध' शब्द का बड़ा गलत अर्थ ले लेते हैं। **अश्वमेध**-तो हम घोड़े को ही जला देते हैं। **गोमेध**-हम समझते हैं कि यह गाय को मारना है। इस तरह तो पितृमेध का अर्थ ज़िन्दा मनुष्य को जला देना होना चाहिए। अन्त्येष्टि में जलाते तो हैं लेकिन जीवित को तो नहीं जलाते। जब जीवित को यहाँ नहीं जलाते तो वहाँ भी जीवित को क्यों जलाना चाहिए? जो संगत अर्थ है वह लेना चाहिए। संगत अर्थ यह आता है कि जो मनुष्य का शरीर मृत्यु के बाद दुर्गन्ध का, वातावरण के प्रदूषण का कारण बनता है, उसको पवित्र करना। उसको पवित्र करने के लिए उसके साथ जो क्रिया की जाती है उसको पितृमेध कहते हैं। इसी तरह हमें गोमेध, अश्वमेध आदि के बारे में समझना चाहिए। अर्थात् जो है उसे अच्छा कैसे कर सकते हैं। अब उन पशुओं की अन्त्येष्टि मनुष्यों की तरह तो होती नहीं, इसके नियम मनुष्यों के लिये हैं, पशुओं के लिये नहीं। इसलिये यदि पशुओं की कोई बात हो सकती है तो यह कि उनकी जो परिस्थिति है उसको हम मनुष्य के लिए उपयोगी बनाते हैं, जिससे कि वे अधिक उपयोगी बनें, अधिक अच्छे रहें।

इस मन्त्र का देवता पितृमेध है। इसलिये प्रकरण चला अन्त्येष्टि का और अन्त्येष्टि के प्रकरण में मुख्य बिन्दु यह आया कि जब पति की मृत्यु हो तो पत्नि की भूमिका क्या होगी। यहाँ पर जो भूमिका बतायी गयी है-**इमा नारीरविधवाः सुपत्नी- राञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु।** वह नारी विधवा रहने के लिए नहीं है। विधवा जीवन बिताने के लिए बाध्य नहीं है। वह **अनश्रवा** होनी चाहिए, **अनमीवा** होनी चाहिए, **सुरत्ना** होनी चाहिए। इसकी चर्चा विस्तार से हम कर चुके हैं कि उन्हें दुःख नहीं होना चाहिए जिससे उनकी आँखों में आँसू आएँ और उनका शरीर स्वस्थ होना चाहिए। ऐसा कोई काम न हो जिससे उनके स्वास्थ्य की विकृति हो। वे अलंकृत हों।

हम चर्चा यह कर रहे हैं कि जब इतनी सब बात वेद में मिलती है, निर्देश मिलता है तो हमारे समाज में इसके विपरीत क्यों है। हमारे समाज में हम उदाहरण तो बहुत दे देते हैं लेकिन हम विधवाओं को उनके अधिकार देते तो नहीं हैं, उनको पुनर्विवाह की अनुमति हम नहीं देते हैं, अलंकृत होने की अनुमति नहीं देते हैं, और चाहते हैं कि वे पुरुष के साथ जल जायें। इसके पीछे कारण 'धर्म' नहीं है, इसके पीछे कोई सदिच्छा, सद्भाव, परलोक की प्राप्ति ऐसा कोई कारण भी नहीं है। इस समाज में जीवन के बाद सबसे बड़ी जो इच्छा रहती है, वह साधन जुटाने की, सम्पत्ति बनाने की रहती है, पैसा इकट्ठा करने की रहती है, अधिकार करने की रहती है और यह बात छोटे रूप में भी, बड़े रूप में भी समाज में चलती रहती है।

जब पति की मृत्यु होती है तो सबसे बड़ी दुर्घटना घर में, उसकी पत्नी के साथ होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि पत्नी के जो अधिकार हैं वे लोगों को सह्य नहीं होते और इसलिए वे चाहते हैं कि किसी भी तरह से हमारे मार्ग की यह जो बाधा है, वह दूर हो जाये। आज भी हम

वृन्दावन में, काशी में, हरिद्वार में और भी कुछ स्थानों पर देखते हैं कि हजारों की संख्या में विधवायें रहती हैं। उनके रहने का कोई धार्मिक आधार नहीं है। यदि कोई ईश्वर-भक्ति के लिये आत्मा की प्रेरणा से निकली भी है तो यह अपवाद स्वरूप हो सकता है। अधिकांश को लोगों ने पति की मृत्यु के बाद घर से निकालने के उपाय किये हैं और उन उपायों के अन्तर्गत कहीं काशी में, कहीं मथुरा में छोड़ दिया है। यह परिस्थिति जो हमारे समाज में बनी, इसका मुख्य कारण सम्पत्ति, भूमि को अपने अधीन करने की इच्छा है। इसलिए बाधा के रूप में जो महिला विद्यमान है उसको हटाने के लिये इन उपायों का प्रचलन है। भावुकतावश हो सकता है, किसी ने कभी किया होगा, लेकिन जो लोग इसको उचित मानते हैं, उनका प्रयोजन लोभ के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

पिछले दिनों मित्रों में एक घटना की चर्चा हो रही थी कि जब कोई स्वार्थ की बात आती है तो मनुष्य अपने प्रियजनों को भी उपेक्षित कर देता है। एक मित्र न्यायाधीश है और न्यायाधीश होने के समय में उनके पास एक विवाद आया। दो भाइयों ने एक बहन की सम्पत्ति को अपने नाम कर लिया। आप कल्पना कीजिये कि दो भाई मिलकर सम्पत्ति को अपने नाम कर लेते हैं। अपने भान्जे को, बहन के बेटे को उन्होंने अपने यहाँ गोद लिया हुआ दिखा दिया और उसकी सम्पत्ति को अपने नाम कर लिया। बहन गाँव की थी, बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थी, उसे पता नहीं चला। बहुत दिनों बाद उसे पता लगा कि उसके खेत खलिहान तो भाइयों ने हड़प लिये हैं। उसने न्यायालय की शरण ली, लेकिन उसके पास प्रमाण पर्याप्त नहीं थे। कागज नहीं थे। विद्वान् न्यायाधीश ने विवेक से एक बात की। उन्होंने कहा कि चलिये आपके यह कागज-पत्र मैं एक तरफ रख देता हूँ। आप केवल इतना बता दीजिये कि क्या यह महिला आपकी बहन है? उन्होंने कहा कि हाँ, बहन तो है। वे बोले-बहन है यह आप स्वीकार करते हैं तो उसकी सम्पत्ति उसको दे दीजिये, इसमें आपको कानून की कहाँ जरूरत है। यदि आप मानते हैं कि बहन है, वस्तु उसकी है, तो आप अधिकार क्यों करना चाहते हैं? तो जब हम अपनी बहन की, भाई की सम्पत्ति को अपने अधिकार में करने की इच्छा करते हैं तो दूसरों का तो कहना ही क्या है। कोई व्यक्ति सम्पत्तिशाली है और दुर्भाग्य से उसकी कोई सन्तान नहीं है तो उसके मरने पर कितने लोग एक साथ आ जाते हैं, उत्तराधिकारी बनकर, क्योंकि सम्पत्ति का सभी को लोभ रहता है, सभी उसे हड़पना चाहते हैं।

इसलिए मन्त्र कहता है **इमा नारीरविधवाः सुपत्नीः**, यह नारी विधवा नहीं है, इसको विधवा होना बाध्य नहीं है, उसकी सन्तान है तो उनकी सुरक्षा के लिये, पालन के लिये उसका रहना आवश्यक है। सन्तान नहीं है तो वह ठीक आयु में, ठीक समय में, आवश्यकता हो तो वह विवाह भी कर सकती है, सन्तान भी प्राप्त कर सकती है। इसलिए हमारे यहाँ जो मूल संकट है महिलाओं के साथ, उनके पास उनका सम्मान नहीं है। हम सम्मान की बात तो बहुत करते हैं, उन्हें देवता के स्थान पर रखते हैं, हमारे यहाँ उन्हें देवता कहा तो गया है, ग्रन्थ में लिखने को लिखा भी गया है लेकिन हमारा जो व्यवहार है और हमारा जो इतिहास है उसमें ऐसा नहीं है। अपवाद तो हो सकता है, लेकिन सामान्यतः ऐसा नहीं है।

इस दृष्टि से हमें इस पर विचार करने की और इसमें सुधार करने की आवश्यकता है कि जो हमने बलपूर्वक इन वेद मन्त्रों के अर्थ निकालने का यत्न किया-**आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे** में अग्रे के स्थान पर **अग्ने** कर दिया और यह घोषणा कर दी कि यदि पति मर गया तो पत्नी को साथ ही जला दो, लेकिन यह अर्थ एकांगी है। यदि उसके साथ जलना ही चाहिये, अकेले नहीं रहना चाहिये तो किसी को भी अकेले नहीं रहना चाहिये। यदि दुर्भाग्य से पत्नी मर जाये तो पति को तो आज तक किसी ने जलते नहीं देखा। हम यह अपेक्षा क्यों करते हैं कि पत्नी ही जले और पुरुष जीवित रहे, चाहे दूसरा विवाह कर ले, अपने जीवन को सामान्य बना ले। यह जो सामाजिक विषमता है, इसको वेद स्वीकार नहीं करता। वेद तो कहता है कि यह पितृमेध का प्रकरण है और यदि पति की मृत्यु हो चुकी है तब भी उस महिला के तीन विशेषण तो रहेंगे-**अनश्रवाः अनमीवा, सुरत्ना।** उसके जो दुःख हैं, उन्हें बनाए नहीं रखना है। वे दुःख दूर होने चाहिएँ, वह महिला आँसुओं से रहित होनी चाहिए। वह अलंकृत भी होनी चाहिए। हम

दु:ख के नाम पर किसी के अलंकार के अधिकार को छीन लेते हैं, उनको अच्छे कपड़े, अलंकार नहीं धारण करने देते। तो यह जो हमारी प्रवृत्ति है, यह मानसिक दृष्टि से उन्हें दबाने के लिये है, उन्हें अनुभव कराने के लिये है कि इस संसार में उन्होंने कुछ खोया है इसलिए वे पाने की अधिकारी नहीं है। लेकिन वेद की मान्यता है कि महिला का जीवन पुरुष के जीवन के साथ तभी तक है, जब वह जीवित है। जीवित का जीवित से सम्बन्ध है, लेकिन जीवित का मृत से नहीं है। मृतक चाहे बाप है, माँ है, भाई है, पत्नी है। जब हम अपने माँ-बाप के साथ नहीं जलते, कोई भी माँ-बाप बेटे के साथ नहीं जलता, तो फिर पति के मरने पर पत्नी को साथ क्यों जलना चाहिये? जबकि पत्नी के मरने पर पति भी नहीं जलता। इसलिए यह जो व्यवहार हम चाहते हैं या हमको दिखाई देता है, यह न तो शास्त्रसम्मत है, न समाजसम्मत है। यह समाज की त्रुटि है, समाज की अन्धपरम्परा, अन्धविश्वास है। यह अज्ञान है, जिसके कारण हम ऐसा करते हैं और इसे करते हुए हम यह अपेक्षा करते हैं, यह यत्न करते हैं कि जो हम सोचते हैं कि जो हमारे मन में है वह शास्त्रीय वचनों में भी हो, और वह वेद के मन्त्र से भी सिद्ध हो जाए। उसके लिए वे थोड़ा सा उलट-पुलट करने में भरोसा करते हैं। ऐसे लोगों ने इस मन्त्र के आधार पर कहा कि अनश्रव: अनमीवा सुरत्ना तो ठीक है कि महिला को बहुत सुन्दर वस्त्रों से सजा दो, दु:खों को भूल जाए कह दो और ऐसी महिला को **आरोहन्तु जनयो योनिम्** में **अग्रे** के स्थान पर **अग्ने** कर दिया कि अग्नि में उसको चढ़ा दो। आप यह जानते हैं कि एक तो बलपूर्वक उसको अग्नि में बैठाना और उसके चीखने-चिल्लाने को या उठकर भागने से रोकने के लिये उसे लकड़ियों से बाँध देना और उसकी चीत्कार को कोई न सुन सके इसके लिए बहुत सारे ढोल-बाजे बजाना और इसे स्वर्ग की ओर उसकी यात्रा बताना-यह एक दुरभि सन्धि है, षड्यन्त्र है और इसका प्रयोजन केवल सम्पत्ति और साधनों को हड़प लेने का प्रयत्न है।

इसलिए वेदमन्त्र के एक शब्द के साथ यह मिथ्या प्रचार जुड़ गया है। वेदमन्त्र तो कहता है कि हम महिलाओं को अपने परिवार में अग्रणी बना कर रखें, उनको आगे चलनेवाला बनाकर रखें। इस वेदमन्त्र के माध्यम से एक सिद्धान्त हमको बहुत स्पष्ट समझ में आता है कि हम जीवित के साथ हैं, जीवन का जीवन के साथ सम्बन्ध है किन्तु यदि कोई भी मर जाता है तो उसका जीवित के साथ सम्बन्ध शेष नहीं रहता। यह इस मन्त्र का सन्देश है, जिसे हमें समझने की आवश्यकता है।

परोपकारी के सम्बन्ध में घोषणा

प्रकाशन - परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर

संपादक - डॉ. सुरेन्द्र कुमार
नागरिकता - भारतीय
पता - म.नं. ४२९, सेक्टर-७, गुड़गांव, हरि.

प्रकाशक - डॉ. सुरेन्द्र कुमार
नागरिकता - भारतीय
पता - संरक्षक, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर

मुद्रक का नाम - श्री मोहनलाल तँवर,
पता - वैदिक यन्त्रालय, केसरगंज, अजमेर

प्रकाशन अवधि - पाक्षिक

मैं, डॉ. सुरेन्द्र कुमार एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सही है।

फरवरी २०२० **प्रकाशक : डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

पं. चमूपति जी का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ- आर्यसमाज के एक निष्ठावान्, सिद्धान्त-प्रेमी तथा स्वाध्यायशील सेवक डॉ. पारस कुमार जी उझानी, (उ.प्र.) यदाकदा चलभाष पर शंका समाधान तथा धर्म-चर्चा करते ही रहते हैं। एक दिन आपने जीवन तथा प्रकृति के अनादित्व का प्रश्न उठाया। आपने कहा कि इनको भी ईश्वर के सदृश अनादि क्यों माना जावे, फिर ईश्वर की विशेषता क्या रही? वह इनका नियन्ता कैसे हो गया?

साथ ही यह कहा, इन्हें ईश्वर द्वारा उत्पन्न किया गया क्यों न मान लिया जावे?

वास्तव में ये दो प्रश्न हैं। उन्हें कहा गया वास्तविकता यह है कि यह आर्यसमाज का ही सिद्धान्त नहीं है। पं. लेखराम वंश के पुरुषार्थ परमार्थ से आज के वैज्ञानिक युग में पूरे विश्व का वैज्ञानिक धर्म ऋषि जी का वैदिक त्रैतवाद ही है। जो नहीं मानते उनकी मान्यता भी यही है। विज्ञान का सर्वसम्मत मत यह है कि Matter can never be created and destroyed अर्थात् प्रकृति न तो उत्पन्न की जा सकती है और न नष्ट की जा सकती है। इसी कथन को वैदिक धर्म अनादि व नित्य कहता है। इस प्रकार पूरा विश्व आज प्रकृति को अनादि मान चुका है। आस्तिक मत पन्थ ईश्वर को तो अनादि (uncreated) मानते ही हैं। प्रश्न होगा कि जीव व प्रकृति को किससे बनाया गया?

अब बची तीसरी सत्ता जीव की। जैसे इन दो को अनादि माना जाता है उसी आधार पर उन्हीं तर्कों से जीवों को भी अनादि मानना पड़ता है और सच पूछते हो तो पं. लेखराम वंश के आर्य विद्वानों ने न मानने वाले सब मतों को जीव को भी अनादि मनवा लिया है। प्रमाण चाहिये तो डॉ. गुलाम जेलानी जी इस्लाम के इस युग के सर्वश्रेष्ठ लेखक की पुस्तक 'अल्लाह की आदत' पढ़ लीजिये। हमने अपनी दो मौलिक व खोजपूर्ण पुस्तकों 'कुरान सत्यार्थप्रकाश के आलोक में' तथा 'वैदिक इस्लाम में' उनके साहित्य से अनेक प्रमाण दिये हैं।

महर्षि दयानन्द ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव को भी अनादि व नित्य मानते हैं। डॉ. गुलाम जेलानी का भी घोष यही है कि अल्लाह की आदत नहीं बदलती। जब अल्लाह अनादि काल से न्यायकारी, स्रष्टा, पालक व स्वामी है तो क्या पहले सृजन नहीं करता था? भविष्य में स्रष्टा नहीं रहेगा? प्रभु न्यायकारी कब से है? कब न्यायकारी नहीं होगा? वह प्रभु न्याय किसको देता चला आ रहा है और कब तक न्याय देता रहेगा। वह पालक भी सदा से है। स्वामी भी सदा से है। दाता भी सदा से है।

जीवों की सत्ता थी व रहेगी। तभी तो वह प्रभु न्याय देता है। उनका पालन करता है व करता रहेगा। प्रकृति थी व रहेगी तभी तो वह दाता था, है, व रहेगा। जब देने को कुछ नहीं था तो वह देता क्या था? इससे त्रैतवाद सिद्ध हो गया। डॉ. जेलानी ने डंके की चोट से लिखा है कि मैं न्याय के आसन पर आसीन ख़ुदा को सदा से, पल-पल और क्षण-क्षण न्याय करते हुये देखता हूँ। लीजिये प्रलय के एक दिन (Day of Judgement) को न्याय करने के अन्धविश्वास का भी उन्मूलन हो गया।

आर्य विद्वानों ने महर्षि जी के पंजाब में दिये गये एक उत्तर को अत्यन्त योग्यता से संसार में प्रचारित-प्रसारित करके सैमेटिक मतों के हृदय पर अंकित कर दिया है। ऋषि जी ने एक विधर्मी को कहा कि जीव जो स्वर्ग-नरक में जावेंगे वे सदा वहीं रहेंगे, यह तुम्हारी मान्यता है। जब तुम उनका नाश नहीं मानते तो उनकी उत्पत्ति भी नहीं होती, यह मानना पड़ेगा। कभी एक किनारे की भी नदी होती है?

एक घने सयाने मुल्ला जी ने बड़ी चुतराई से डींग मारते हुए यह लिखा था, ''यदि एक किनारे की नदी नहीं होती तो फिर आप कोई ऐसी नदी दिखाओ जिसका एक भी किनारा न हो।''

मौलाना की चोट जीवों तथा प्रकृति के अनादित्व पर थी। जिनका न आदि है न अन्त है। एक भी किनारा नहीं है। देखने सुनने में यह बड़ा प्रबल तर्क हो सकता है।

आचार्य पं. चमूपति जी ने तपाक से इस तर्क को काटते हुए उत्तर दिया, ''हाँ मौलाना! है, ऐसी भी नदी है-अल्लाह मियाँ।'' अब मौलवी जी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। ये सब मत अल्लाह का भी न आदि मानते हैं और न अन्त। एक शताब्दी के लगभग समय होने वाला है, आर्य दार्शनिक चमूपति जी के प्रश्नों का जीवों तथा प्रकृति को अनादि व नित्य न मानने वाले आज तक उत्तर नहीं दे सके।

इस सम्बन्ध में एक घटना हमें रह-रहकर याद आती है। बड़ी पुरानी बात है, हम आर्यसमाज नया बाँस दिल्ली के ऊपर के बरामदे में बैठे हुये पं. चमूपति जी के सुयोग्य सुपुत्र डॉ. लाजपत जी डी.लिट् से बातचीत कर रहे थे। सम्भवत: आचार्य विशुद्धानन्द जी भी तब हमारे पास बैठे थे। एक-दो सज्जन और भी थे। तभी संयोग से रोजड़ के एक स्नातक वहाँ पधारे। उन्होंने वहाँ से सांख्य, न्याय आदि तीन दर्शनों में आचार्य की डिग्रियाँ लीं थीं। ऐसा आपने हमें तब बताया। हमने उनसे पूछा, ''क्या पं. चमूपति जी का दार्शनिक साहित्य भी कुछ पढ़ा है?''

उन्होंने कहा, ''उन्होंने तो किसी दर्शन का कोई भाष्य नहीं लिखा। उनकी कोई दार्शनिक पुस्तक तो हमारे पाठ्यक्रम में थी नहीं।''

उन्हें कहा गया कि ऋषि दयानन्द जी, पं. लेखराम जी, पं. गणपति शर्मा ने भी किसी दर्शन का भाष्य नहीं किया। क्या वे दर्शनिक विद्वान् नहीं थे? महात्मा जी इस पर कुछ कह न सके। फिर हमने ऊपर का 'किनारे वाला' मौलाना का प्रश्न उनके सामने रखा और उन्हें इसका उत्तर देने के लिये कहा। आपने जीव व प्रकृति का अनादित्व सिद्ध करने के लिये सांख्य, न्याय दर्शन के कई सूत्र तो हमें सुनाये, परन्तु ऐसी भी तो कोई नदी नहीं जिसका एक भी किनारा न हो। इसका प्रतिवाद करने के लिये कोई अकाट्य उत्तर वह न दे सके। इस पर डॉ. लाजपतराय जी ने उनकी सहायता करते हुये संकेत किया कि ''किनारे को काटकर दिखायेंगे तो बात बनेगी।''

हमारे योग्य महात्मा ऐसा न कर सके। तब हमने ऊपर का पं. चमूपति जी वाला उत्तर उन्हें सुनाया कि आठ-दस शब्दों में आक्षेपकर्त्ता को चुप करवा दिया। तब उन्हें बताया यह उत्तर आचार्य चमूपति जी ने दिया है। यह सुनकर वह महात्मा वाह! वाह!! कह उठे।

उन्हें यह भी बताया कि ज्ञान के सागर गुरुवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के एक मुसलमान वकील भक्त ने पं. चमूपति जी की इस विषय की अद्भुत दार्शनिक पुस्तक पढ़कर स्वामीजी महाराज से तब कहा था, ''मुझे आर्यसमाज की विचारधारा सब खींचती व जँचती थी, परन्तु प्रकृति तथा जीव का अनादित्व का सिद्धान्त मुझे कतई नहीं जँचता था। अब पं. चमूपति कृत 'जवाहिरे जावेद'' दार्शनिक पुस्तक पढ़कर तीन पदार्थ अनादि हैं- यह सिद्धान्त पूरा-पूरा मेरी समझ में आ गया है।'

जो सज्जन बिना पढ़े, बिना विचारे प्रत्येक विषय की पुस्तक पर विद्वानों को नम्बर देते रहे हैं और कालजयी ग्रन्थ पं. चमूपति जी का, पं. लेखराम जी का, स्वामी वेदानन्द जी का कौनसा है? इस व्यायाम में लगे रहे 'जवाहिरे जावेद', चौदहवीं का चाँद, पं. लेखराम कृत पुनर्जन्म मीमांसा आदि ग्रन्थ ऐसे परीक्षकों-डिग्रीधारियों की समझ में आने वाले नहीं। आर्यसमाज ने ऐसे खोजपूर्ण गम्भीर व मौलिक ग्रन्थों का पढ़ना-पढ़ाना, उन पर चर्चा करना व व्याख्यान करवाना छोड़ दिया है तभी तो डॉ. पारसकुमार जी की कोटि के स्वाध्यायप्रेमियों के मन में जीवों व प्रकृति के अनादित्व के विषय में शङ्का उपज गई।

हमें खूब याद है कि सन् १९६३ में आर्यसमाज माटुंगा मुम्बई में हमारा ''चौदहवीं का चाँद'' तथा ''जवाहिरे जावेद'' के आधार पर वेद के मूलभूत दार्शनिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान सुनकर श्रद्धेय पं. सुदर्शन जी कहानीकार ने यह उत्साहवर्द्धक टिप्पणी की ''लाहौर के पश्चात् पहली बार आज एक व्याख्यान सुनने का अवसर मिला है। इसे कहते हैं व्याख्यान।'' आर्य पुरुषो! आओ, हम सब अपनी दुर्बलतायें दूर करें। गम्भीर व पठनीय मौलिक साहित्य के अधिकारी विद्वान् पैदा करें। रेडीमेड (readymade) लैक्चरों के देनेवाले समाज को नहीं बचा सकते।

आर्योचित व्यवहार- मेरी एक पुत्री कविता आर्या जम्मू के एक बहुत प्रतिष्ठित स्कूल में टीचर है। उसमें धर्मभाव कूट-कूट कर भरा हुआ है। उसकी उत्कट इच्छा है कि मेरी पुत्री व पुत्र दोनों ही देशप्रेमी व वेदनिष्ठ आर्य बनें। उसकी पुत्री जन्म से ही हमारे पास रहकर पढ़ रही

है। इस समय पंजाब विश्वविद्यालय में रहकर पीएच.डी. कर रही है। उसका पुत्र हठ करके कनाडा में उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये चला गया है। वह भी दो वर्ष हमारे पास रहकर पढ़ता रहा। वह पढ़ाई में तो असाधारण योग्यता वाला विद्यार्थी है। जो सुन ले, सुनते ही उसके हृदय पर अंकित हो जाता है। बिना पढ़े कक्षा में हर बार प्रथम आता रहा है, परन्तु उसकी दिनचर्या तो कुछ थी ही नहीं। स्नान, सन्ध्या, व्यायाम, भोजन, पढ़ाई आदि का घर में कतई कोई नियम नहीं था।

इस कारण मैं उसके भविष्य की सोचकर चिन्तित व दु:खी रहता था। वेद में आता है कि ''परमात्मा! हमें देवों के पापों से बचाओ।'' इससे अच्छा तो यही था कि यह सामान्य विद्यार्थी होता। अब असाधारण योग्यता के कारण न जाने देश, धर्म और जाति का क्या-क्या अनिष्ट करे। कम योग्यता व मूर्ख व्यक्ति किसी की इतनी हानि नहीं कर सकता जितनी कि विशेष योग्यता रखनेवाला दुष्कर्मी नागरिक व नेता कर सकता है। यही मेरा नाती बिना किसी से कोचिंग लिये प्रतियोगिता में पहली बार ही उत्तीर्ण होकर कनाडा के एक बड़े शिक्षा संस्थान में प्रवेश पाने में सफल रहा। मेरे अभिन्नहृदय संगी-साथी आर्यबन्धु राजेन्द्र जी शर्मा भी कनाडा में हैं। घर में श्रीमती 'जिज्ञासु' व मेरी पुत्रियों को पता था कि डॉ. राजेन्द्र जी की कोटि का मेरा आर्य भाई कनाडा में है, परन्तु परिवार में कोई मुझे यह नहीं कहता था कि उन्हें कहूँ कि मेरे नाती का ध्यान रखना। सब जानते ही थे कि मुझे उसका उठना, बैठना, सोना, जागना, स्नान-व्यायाम का नियमविहीन होना अखरता है सो मैं डॉ. राजेन्द्र जी को इसके बारे में कुछ न कहूँगा।

उसकी दिनचर्या कनाडा जाकर अपने आप सुधर गई। यह मुझे पता था कि यह भी डॉ. राजेन्द्र जी के कहीं आस-पास ही रहता होगा। उसके सारे मित्र उसके पीछे कनाडा जाने के लिये कटिबद्ध हैं। मेरा नाती शाकाहारी तो वहाँ भी पक्का है। अपना भोजन आप ही बनाता है। डॉ. राजेन्द्र जी का सामाजिक कार्य के लिये विचार विमर्श के लिये चलभाष आया तो मैंने उनसे अपने नाती का ध्यान रखने, कहीं बिगड़ न जावे, संस्कारविहीन न हो जावे, कुछ सम्पर्क साधने को कहा। तब पता चला कि वह डॉ. राजेन्द्र जी के निवास से आठ दस मिनट की दूरी के एक संस्थान में पढ़ता है। डॉ. राजेन्द्र जी ने उसके चलभाष का नम्बर लेकर उससे बातचीत की और हमें कहा कि उस संस्थान में तो विशेष योग्यता के विद्यार्थी ही प्रवेश पा सकते हैं। तब हमने उन्हें बताया कि मेधावी तो वह जन्मजात है उसे आप सम्भाल सकें, मार्गदर्शन करें तो इसके कुछ साथी जो वहाँ हैं, कुछ और पहुँचेंगे वे सब आपकी प्रेरणा से दृढ़ आर्यवीर बन सकते हैं।

मेरा नाती डॉ. राजेन्द्र जी का निमन्त्रण पाकर उनके घर गया। एक ही भेंट में उनके आर्योचित व्यवहार की गहरी व अमिट छाप लेकर लौटा। डॉ. जी ने उसे कहा जब नाना-नानी याद आवें तो हमारे पास आ जाया कर। भारत में अपने सब मित्रों को उसने यह समाचार व चित्र भेजे, डॉ. राजेन्द्र जी से भी समाचार मिल गया। मेरे हृदय की चिन्ता के एक भारी पत्थर का बोझा डॉ. राजेन्द्र जी ने उतार दिया। स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने एक वेद-ऋचा की व्याख्या में लिखा है कि किसी के मन में उत्साह व ऊर्जा भर देना धन सम्पदा के सहयोग से भी कहीं बड़ी सहायता है। डॉ. राजेन्द्र जी ने हमारे परिवार की नहीं, नये-नये सुशिक्षित युवकों की टोली को अपने आर्योचित व्यवहार से खींचकर आर्यसमाज की भारी सेवा की रूपरेखा बना ली है। भवनों के निर्माण से बड़ा मानव-निर्माण का यह कार्यक्रम है।

पं. लेखराम जी की वंश परम्परा- मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादयानी ने प्राणवीर पं. लेखराम जी की छल-कपट से हत्या करवाकर आर्यों का हृदय दुखाने के लिये अत्यन्त कटु शब्दों में डींग मारते हुये यह लिखा कि देखो, लेखराम संसार से नि:सन्तान होकर मर गया। एक बेटा जन्मा था वह भी उसके जीते जी मर गया। उसका वंश कोई पुत्र न होने से आगे न चल सका। मिर्ज़ा यह भूल गया कि पुत्र न होने से पं. लेखराम को यदि आप अत्यन्त अभागा तथा बुरा बताते हो तो पं. शान्तिप्रकाश जी ने पूछा, ''फिर हजरत मुहम्मद के लिये क्या कहोगे?'' यह तो मिर्जा ने इस्लाम पर भी चोट मार दी। कई बार कादियाँ में अपने व्याख्यानों में यह लेखक कहता रहा कि वंश शरीर से ही नहीं विचारों से, मानस सन्तान से भी आगे बढ़ता,

फूलता-फलता है। हम सब आर्य पं. लेखराम जी के मानसपुत्र हैं। गुरु गोविन्दसिंह के चारों पुत्रों का बलिदान हो गया। उनके प्रति श्रद्धा रखने वाले करोड़ों देशवासी उनके मानसपुत्र हैं।

किसी भाई ने अपने एक प्रश्न में कुछ पूछा तो पं. लेखराम की शिष्य-परम्परा अथवा उनके वंश के कुछ मुख्य-मुख्य समर्पित मानसपुत्रों-वंश परम्परा पर संक्षेप से लिखने का विचार बना। यह वंश परम्परा मिटने न पाये। यह चलती रहनी चाहिये। इस वंश पर यदि आर्यजन चाहेंगे तो कभी एक पुस्तक देने का प्रयास किया जावेगा। आज तो बहुत संक्षेप से उनका परिचय मात्र ही होगा। जितना कालक्रम से हो सकता है कालक्रम से ही लिखा जावेगा। जो भी उत्साही युवक विरोधियों का उत्तर प्रत्युत्तर देने में पंडित जी के पश्चात् मैदान में उतरे, हम उनकी आगे चर्चा करेंगे। यह कड़ी लुप्त न हो जावे, सब मिलकर इसका कुछ उपाय करें।

स्वामी योगेन्द्रपाल जी- आपका जन्म दीनानगर का ही था। बड़े ऊँचे विद्वान्, मत-पन्थों के मर्मज्ञ विद्वान् और उर्दू के अच्छे लेखक थे। कई छोटी-छोटी पुस्तकें भी लिखीं। बड़े कर्मठ, तपस्वी व त्यागी महात्मा थे। पंडित जी के पश्चात् कादियाँ जाकर मिर्ज़ा को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। कुछ प्रश्नों के उत्तर माँगे। मिर्ज़ा कोई उत्तर न दे सका। न ही सामने आया। दीनानगर जहाँ स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने दयानन्द मठ की आगे चलकर स्थापना की, वहाँ पहले 'देव भवन' नाम से आपने अपनी छोटी सी कुटिया का निर्माण किया। मठ के मुख्य द्वार पर आज भी दयानन्द मठ से ऊपर 'देव भवन' लिखा देखा जा सकता है। आपने कोई बहुत लम्बी आयु न पाई। कई शास्त्रार्थ किये। बिजनौर में भी कभी सन् १९०५-६ में आपने मुसलमानों से बहुत बड़ा शास्त्रार्थ किया। पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय तब बिजनौर समाज के मन्त्री थे।

महाशय चिरञ्जीलाल जी 'प्रेम'- आप लाला लाजपतराय जी के दैनिक वन्देमातरम् तथा महाशय कृष्ण जी के दैनिक प्रताप के सहायक सम्पादक रहे। वर्षों आर्य मुसाफिर मासिक तथा साप्ताहिक के सम्पादक बनकर बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। पं. लेखराम जी को सुनकर धर्मच्युत होने से बच गये। सारा जीवन विरोधियों से शास्त्रार्थ करते रहे। आर्यसमाज के लोकप्रिय गीतकार, कुशल लेखक तथा मधुर वक्ता थे। बहुत लम्बी आयु पाई। साठ वर्ष तक धर्म प्रचार किया। यह आपके एक गीत से पता चला कि आप धर्मच्युत होते-होते बच गये।

पं. भोजदत्त जी- आप पहले पंजाब में राजकीय सेवा में पटवारी व जिलेदार रहे। धर्म-प्रचार में विशेष रुचि होने से त्याग-पत्र देकर उ.प्र. चले गये। आगरा में 'मुसाफ़िर विद्यालय' की स्थापना करके आर्यसमाज के लिये कई विशेष योग्यता के ऊँचे विद्वानों का निर्माण किया। उनके पत्र का नाम केवल 'मुसाफ़िर' था।

आप सिद्धहस्त शास्त्रार्थ महारथी और निडर उपदेशक थे। पं. महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, कुँवर सुखलाल जी, ठाकुर अमरसिंह, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, हिन्दी के जानेमाने साहित्यकार राहुल जी आदि कई नामी विद्वान् आपने देश व समाज को दिये। आपके दोनों पुत्र सुयोग्य विद्वान् व समाजसेवी थे।

पं. वज़ीरचन्द जी- बड़े दु:ख की बात है कि आर्यसमाज अपने इस निर्भीक तप:पूत मिशनरी विद्वान् साहित्यकार को भूल चुका है। पं. लेखराम जी के बलिदान के पश्चात् उनकी स्मृति में निकाले गये आर्यमुसाफ़िर के सहायक सम्पादक, फिर सम्पादक के रूप में आपने महात्मा मुंशीराम जी के साथ बड़ी ठोस तथा अविस्मरणीय सेवा की । पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी का ईसाइयों की एक लेखमाला के रूप में छपे सब आक्षेपों का उत्तर आपने ही 'आर्य मुसाफ़िर' में एक लेखमाला के रूप में प्रकाशित किया। यहीं से पूज्य उपाध्याय जी के साहित्यिक जीवन का आरम्भ होता है। आपने फिर पीछे मुड़कर देखा ही नहीं। अपनी आत्मकथा में उपाध्याय जी ने पत्र का नाम भूलवश कुछ और लिख दिया। हमने यह लेखमाला पढ़ी है।

कुछ समय के लिये आप राजस्थान सभा की सेवा में चले गये। वहाँ आपने धर्म-प्रचार की धूम मचा दी। गोराशाही के परम भक्त प्रतापसिंह महाराजा की आर्यसमाज घाती गतिविधियों व षड्यन्त्रों की आपने खूब पोल खोली। आप राजस्थान सभा के मन्त्री भी रहे। ऐसा सुयोग्य विद्वान् व मिशनरी फिर राजस्थान सभा को दूसरा कोई न मिल

सका। खेद का विषय है कि राजस्थान में नये-पुराने किसी भी लेखक ने कभी उनकी चर्चा नहीं की। वह कुछ वर्ष वहाँ रहकर पंजाब लौट आये। लम्बी आयु नहीं पाई। आपके समय का आर्य मुसाफ़िर का प्रत्येक अंक सुरक्षित करने योग्य है। आपने परोपकारिणी सभा को विघटनकारी षड्यन्त्रकारियों से बचाने के लिये जो कुछ किया उसका उल्लेख आज तक किसी ने नहीं किया। 'सद्धर्म प्रचारक' के पुराने अंक इसके साक्षी हैं।

मेहता जैमिनि जी- पं. लेखराम जी के बलिदान के समय उनके भक्त शिष्य मेहता जैमिनि जी (तब जमनादास) बटाला तथा कादियाँ में कुछ समय के लिये मुख्याध्यापक रहे। आपके हृदय में पं. लेखराम तथा पं. गुरुदत्त जी विद्यार्थी की सुलगाई धर्म-प्रेम की ज्वाला धधकती थी। पण्डित जी के बलिदान के पश्चात् कादियाँ आकर मिर्ज़ा को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। जहाँ भी रहे धर्म-प्रचार की, शास्त्रार्थों की धूम मचा दी। शिक्षा-विभाग में यहाँ-वहाँ कई स्कूलों के प्रिंसिपल रहे। अजमेर के डी.ए.वी. स्कूल के भी मुख्याध्यापक रहे। जब अजमेर से पंजाब आने लगे तो वहाँ लोग रो पड़े। संसार के सब महाद्वीपों में वैदिक धर्म का सन्देश सुनाया। शास्त्रार्थ किये, सहस्त्रों लेख लिखे और ८३ पुस्तकें लिखीं। वानप्रस्थी और संन्यासी बनकर कभी टिककर नहीं बैठे। आपकी लगन का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। आपने लगभग ७० वर्ष पं. लेखराम के मिशन की सेवा की। कभी सद्धर्म प्रचारक के भी सम्पादक रहे। वर्षों तक वकालत करते हुये धर्म-प्रचार में प्रमाद नहीं किया।

पं. देवप्रकाश जी- आपका परिवार मूलत: दीनानगर का था। राजकीय सेवा में आपके पिताजी कई स्थानों पर शिक्षक के रूप में सेवारत रहे। आप उर्दू, फारसी और अरबी के मर्मज्ञ विद्वान् थे। स्वामी दर्शनानन्द जी आदि का साहित्य पढ़कर कुछ आर्यों के संगति से वैदिकधर्मी बन गये। इनकी माता मछली को पकाने-खाने के लिये छील रही थी तो मीन की तड़पन के क्रूर दृश्य ने इनका हृदय परिवर्तन कर दिया। आप पक्के आर्य बन गये। यह पं. लेखराम जी के बलिदान के कोई पन्द्रह वर्ष पश्चात् की घटना है। सत्तर वर्ष तक समाज-सेवा में सक्रिय रहे। वक्ता तो प्रभावशाली नहीं थे। पं. लेखराम जी के अमर बलिदान पर मिर्ज़ा के इल्हामों की शव परीक्षा पर एक उत्तम पुस्तक लिखी। मत मतान्तरों तथा कुरान पर कई पठनीय पुस्तकें लिखीं। मध्यप्रदेश रतलाम में लम्बे समय तक समाज-सेवा, शुद्धि व धर्म-प्रचार किया। बहुत त्यागी, तपस्वी तथा निर्लोभी विद्वान् थे। दयानन्द मठ दीनानगर में प्राण त्यागे। स्वामी सर्वानन्द जी ने आपकी बहुत सेवा की।

पं. रामचन्द्र जी देहलवी- इनके नाम व काम को कौन नहीं जानता? अत: इन पर यहाँ अधिक क्या लिखूँ? पं. लेखराम जी को अपना आदर्श मानते थे। सैंकड़ों छोटे-बड़े शास्त्रार्थ किये।

पं. शान्तिप्रकाश जी- पं. लेखराम के तप, त्याग विद्वत्ता व बलिदान से प्रभावित होकर साठ वर्ष से ऊपर समाज-सेवा की। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के शिष्य थे। वाणी में जोश था। लेखनी में ओज था। प्रमाणों का भण्डार थे। विभिन्न मतों से सैंकड़ों छोटे-बड़े शास्त्रार्थ किये। पं. लेखराम जी के बलिदान विषयक मिर्ज़ा की भविष्यवाणियों पर कादियाँ में साढ़े सात घण्टे का भाषण दिया। सरकार भक्त मिर्ज़ाई मत के प्रभाव में गोराशाही ने इन्हें जेल में डाला। बहुत यातनायें दीं। हाइकोर्ट से सम्मान के साथ कारागार से छूटे। देशभर में दूर-दूर तक धर्म-प्रचार व शास्त्रार्थ करने के लिये भ्रमणशील रहे।

पं. निरञ्जनदेव जी- इतिहासकेसरी पं. निरञ्जनदेव जी बड़े रोचक वक्ता थे। मत, पन्थों व इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् थे। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, स्वामी सर्वानन्द जी के शिष्य थे। बहुत कुछ लेखक थे, परन्तु लिखा कुछ विशेष नहीं। पं. लेखराम जी पर दिये गये एक व्याख्यान पर मिर्ज़ाइयों ने सरकार से केस करवाया। खूब सताया। यह काँग्रेस की भी तो करतूत थी। आप दबे नहीं, झुके नहीं। केस को उठाना पड़ा। आप बड़े सरल स्वभाव, प्रेमल और स्वाभिमानी विद्वान् थे। पं. लेखराम साहित्य के मर्मज्ञ थे। स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। (क्रमश:)

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

ऐतिहासिक कलम से....

राज्य-व्यवस्था की वैदिक प्रणाली

(सत्यार्थ प्रकाश के पञ्चम समुल्लास के आधार पर) - ६

पं. रामगोपाल शास्त्री

संसार में किस प्रणाली के आधार पर राज्य-व्यवस्था संचालित हो, यह प्रश्न आज भी विचारकों के सम्मुख है। महर्षि दयानन्द ने छठे समुल्लास में राज्य-व्यवस्था पर वैदिक दृष्टिकोण उपस्थित कर राजा और प्रजा के धर्म, अधिकार और कर्त्तव्यों का निर्देशन किया है। तीन पृथक् सभाएँ, सभा के आधीन राजा, राजा के आधीन प्रजा, प्रजा के आधीन सभा की स्थिति, दुर्ग-विधान, क्षत्रियों का धर्म, राज्य-प्रबन्ध, शत्रु से व्यवहार, दण्ड-विधान आदि विषयों पर महर्षि का मार्गदर्शन राजनीति की अनेक समस्याओं का हल है। इस गम्भीर विषय को पं. रामगोपाल शास्त्री एवं प्रो. रणजीत सिंह ने सरल और ग्राह्य प्रकार से हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। -सम्पादक

समाज में व्यवस्था और शान्ति बनाए रखने के उद्देश्य से ईश्वर का आदेश है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिल के सुख-प्राप्ति और विज्ञान-वृद्धि के लिए राज्य की स्थापना करें और वह राज्य विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा तथा राजार्यसभा बना करके चलावें।

एक व्यक्ति को राज्य का स्वतन्त्र अधिकार न देना चाहिए। जैसे सिंह हृष्ट-पुष्ट पशु को मार कर खा जाता है, वैसे ही अकेला स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश कर देता है और किसी को अपने से अधिक नहीं होने देता, प्रत्युत प्रजा के धन को लूट-खसोट कर अन्याय से राज्य करके अपना प्रयोजन सिद्ध करता है।

प्रजा को राज्य-संचालन के लिए सभापति (राजा) चुनना चाहिए। वह सभापति देश के ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला, पक्षपातरहित, न्याय, धर्म, विद्या का प्रकाशक, अन्याय-निरोधक, दुष्टों को दण्ड देने वाला, श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्दित करने वाला, राज्य कोष को पूर्ण करने वाला, विद्या, विनय युक्त, जितेन्द्रिय और संयमी होना चाहिए।

राजा और प्रजा को राज्य-प्रबन्ध हेतु ऊपर लिखी हुई तीन सभाओं के लिए निम्न प्रकार के अधिकारी नियुक्त करने चाहिएँ। महाविद्वानों को विद्या-सभा अधिकारी; धार्मिक विद्वानों को धर्मसभा अधिकारी; प्रशंसनीय, धार्मिक तथा नीतिनिपुण पुरुषों को राजसभा का अधिकारी बनावें। तीनों सभाओं की सम्मति से राज्य-शासन के उत्तम नियम बनावें और सभापति तथा प्रजा उन नियमों के आधीन राज्य का व्यवहार चलावें।

इस प्रकार राज्य का अधिकार किसी एक स्वतन्त्र व्यक्ति के आधीन नहीं रहना चाहिए। सभापति (राजा) के आधीन सभा, सभा के आधीन राजा, राजा और सभा प्रजा की सम्मति के अनुसार कार्य करें । प्रजा राजसभा के नियमों के अधीन रहे। इस प्रकार प्रजा और राजसभा एक-दूसरे के आधीन रहकर देश के ऐश्वर्य की समृद्धि करें।

इन तीनों सभाओं में मूर्खों की कभी भर्ती न करे, किन्तु सदा धार्मिक और विद्वान् पुरुषों की नियुक्ति करें। बहुसंख्या वाले अज्ञानी सहस्त्रों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें वह कभी भी मान्य नहीं हो सकती। प्रत्युत वेदादि शास्त्रों के विद्वान्, धार्मिक अल्पसंख्या वाले जिस धर्म की व्यवस्था करें वही व्यवस्था श्रेष्ठ और मान्य है।

इस प्रकार तीन सभाओं द्वारा बनाए गए शासन-विधान को कार्यरूप में परिणत करने के लिए भिन्न-भिन्न विभागों में भिन्न-भिन्न राज्याधिकारी अपने राज्य और स्वदेश में उत्पन्न हुए हों। विविध शास्त्रों के ज्ञाता, शूरवीर, कुलीन, सुपरीक्षित, सच्चरित्र, निश्चित बुद्धि और चतुर हों।

जितने भी मनुष्य राज्यकार्य-सिद्धि के लिए नियुक्त किये जावें वे सब आलस्यरहित, बलवान, सदाचारी, राज्य और स्वदेश के भक्त हों।

राज्य और दण्ड

जो राजा दण्डनीयों को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीयों को दण्ड देता है उस राजा के राज्य में कभी

शान्ति और सुख नहीं रहता। दण्ड को अच्छे प्रकार से चलाने वाला धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि को प्राप्त करता है। जो लम्पट, क्षुद्र, नीच-बुद्धि न्यायाधीश होता है वह दण्ड से ही मारा जाता है। जिस राजा के राज्य में डाकू लोग रोती तथा विलाप करती हुई प्रजा के पदार्थों और प्राणों को हरते रहते हैं उसका राज्य स्थिर नहीं रहता। राजा को चाहिये कि दण्ड को ही सब कुछ समझे। दण्ड ही राजा, न्याय का प्रचारक और सबका शासन करने वाला है। दूसरे शब्दों में दण्ड ही राज्य है। दण्ड के यथावत् न होने से राज्य की सब मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और प्रजा दु:खी होती है। जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग करके धान्य की रक्षा करता है। इसी प्रकार राजा का कर्त्तव्य है कि डाकू, चोर, भ्रष्टाचारियों का नाश करके प्रजा की रक्षा करे। जो भी राजपुरुष तथा राज्याधिकारी गुप्त धन (रिश्वत) लेके पक्षपात द्वारा प्रजा पर अन्याय करता है, राजा का कर्त्तव्य है कि उस पुरुष का सर्वस्व हरण करके उसको अधिक से अधिक दण्ड देवे और उसे ऐसे स्थान पर रखे कि जहाँ से पुन: लौटकर न आ सके, क्योंकि यदि उसको दण्ड न दिया जावे तो उसको देखकर अन्य पुरुष भी ऐसे ही दुष्ट काम किया करेंगे।

न्याय-शासन ठीक रूप से चलाने के लिए राजा का कर्त्तव्य है कि बड़े से बड़ा अधिकारी, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित भी क्यों न हो उसे भी पूरा दण्ड देवे। राजा से छोटे भृत्य पर्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजा-पुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिए।

राज्य की व्यवस्था कठोर दण्ड से ठीक बनी रहती है। कड़ा दण्ड देने पर कई आपत्ति करते हैं कि कड़ा दण्ड न देकर कोमल दण्ड देना चाहिए। वे लोग राजनीति को नहीं समझते। एक पुरुष को कठोर दण्ड देने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़ कर धर्ममार्ग में स्थित रहेंगे। एक राई भर भी यह कठोर दण्ड सबके भाग में न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जावेगा तो दुष्टता बढ़ जावेगी।

जो-जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें उन-उन नियमों को तीन सभाओं द्वारा नित्य बाँधा करें। नीचे लिखे नियमों को सदा दृष्टि में रखें-

(१) जहाँ तक बन सके बाल्य-अवस्था में विवाह न करने दें।

(२) युवा अवस्था में भी पति-पत्नी की प्रसन्नता के बिना विवाह न होना चाहिये।

(३) ब्रह्मचर्य का यथावत सेवन करना और कराना चाहिये।

(४) व्यभिचार और बहु-विवाह को बन्द करे, जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल बढ़ता रहे।

(५) सर्वदा आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाते रहना चाहिये।

(६) बल और बुद्धि का नाशक व्यभिचार और अतिविषय सेवन है, विशेषतया क्षत्रियों को दृढ़ाँग और बलयुक्त होना चाहिये।

(७) राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म-न्याय से वर्त कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें। ध्यान रखना चाहिये कि प्रजा सदा ही राजा और राजपुरुषों का अनुकरण करती है। यदि वे श्रेष्ठ होंगे तो प्रजा भी श्रेष्ठ होगी।

(८) राज्य की उन्नति के लिए आवश्यक है कि प्रजा धनाढ्य, नीरोग, खानपान, वस्त्र, निवास तथा शिक्षा आदि से परिपूर्ण हो। इन आवश्यक बातों की ओर राज्य को अधिक ध्यान देना चाहिए, विशेषकर के किसानों का संरक्षण करे। किसान राजाओं का राजा है और सबसे अधिक परिश्रम करने वाला है, उन्हें कभी भी खानपान, छादन, निवास और धन से रहित न होने दे।

(९) राज्य का कर्त्तव्य है कि सब राजपुरुषों को और अन्य प्रजाजनों को भी युद्ध की शिक्षा अवश्य दे। जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं, वही अच्छे प्रकार से युद्ध में लड़ सकते हैं।

(१०) जो कोई योद्धा युद्ध में मर गया हो, उसकी स्त्री तथा असमर्थ सन्तान का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जावें, तब उनको राज्य में यथायोग्य अधिकार देवे।

(११) राज्य-कार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को नियत करे और सदा उनके काम की देखभाल करता रहे। जो यथावत् काम करें उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें

उनको दण्ड देवें।

(१२) प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध कोई काम न करे।

(१३) राज्य का कर्त्तव्य है कि देशाचार और शास्त्र-व्यवहार के आधार पर विवादयुक्त कर्मों का निर्णय शीघ्रातिशीघ्र करे।

(१४) राज्य की रक्षा और शत्रुओं को पराजित करने के लिये सदा ही शस्त्रास्त्रसंयुक्त, प्रशंसनीय तथा बलवती सेना का निर्माण करे।

(१५) प्रजा से इस प्रकार कर (tax) ले कि जिससे प्रजा भी दु:खी न हो और राज्य का कार्य भी बिना किसी विघ्न के चलता रहे।

(१६) राज्य में ऐश्वर्य्य वृद्धि के लिए शिक्षा, उद्योग तथा व्यापार की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

राजधर्म

(सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास के आधार पर)

प्रो. रणजीत सिंह, एम.ओ.एल.

राजधर्म के विषय में महर्षि की नूतन प्रेरणाएँ एवं उद्‌भावनाएँ हैं। उन्होंने अपने सत्यार्थप्रकाश में इन उद्‌भावनाओं को तीन प्रकार से प्रकट किया है। प्रथम ''इसका अभिप्राय यह है'' यह कहकर, द्वितीय- ''अर्थात् द्वारा'', और तृतीय प्रश्नोत्तर विधि से।

अस्तु! अब यहाँ सत्यार्थप्रकाश के षष्ठ-समुल्लास में वर्णित राजधर्म की संक्षिप्त एवं पक्षपातरहित समालोचना प्रस्तुत की जाती है, जिससे पाठक महर्षि द्वारा मान्य राजधर्म के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकें-

राजा ब्राह्म हो

महर्षि के विचारों के अनुसार राजा को अपने क्षात्रधर्म के अतिरिक्त ब्राह्मण के गुणों से भी युक्त होना चाहिये। इसके लिये वह मनुस्मृति का यह श्लोक लिखते हैं और इसका अर्थ इस प्रकार देते हैं-

''ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।

कि जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है, वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है''। यहाँ महर्षि का अभिप्राय यह है कि राजा शस्त्रों के साथ शास्त्रों का भी वेत्ता हो जिससे वह न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा कर सके। इन बातों से यह भी सिद्ध होता है कि राजा कम से कम पच्चीस वर्ष तक शस्त्र तथा शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करे। महर्षि दयानन्द राजा का अल्पायु होना स्वीकृत नहीं करते। इसीलिये तो उन्होंने अपने सत्यार्थप्रकाश में मनु द्वारा मान्य यह सिद्धान्त कि-

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।

अर्थात् चाहे राजा बालक भी हो, उसका अपमान मनुष्यों को नहीं करना चाहिये, का वर्णन नहीं किया है। इससे यह ध्वनि भी स्पष्ट निकलती है कि महर्षि जी के मन्तव्य के अनुसार ''राजा का पद'' पैतृक न होकर गुणों पर पूर्ण रूप से अवलम्बित है। इसी बात को महर्षि इस प्रकार कहते हैं-

तं सभा च समितिश्च सेना च।
सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः।

(तम्) उस राजधर्म को (सभा च) तीनों सभा (समिति च) संग्रामादि की व्यवस्था और (सेना च) सेना मिलकर पालन करें। सभासद और राजा को योग्य है कि राजा जब सभासदों को आज्ञा देवे कि हे (सभ्य) सभा के योग्य मुख्य सभासद! तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का (पाहि) पालन कर और (ये च) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद हैं, वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें। इससे एक बात और भी स्पष्ट होती है कि प्रत्येक सदस्य को सभा के नियमों के साथ-साथ सभाध्यक्ष की व्यवस्था भी माननी योग्य है, परन्तु आजकल की विधान-सभाओं एवं लोकसभा तक में इन नियमों की अवहेलना हम नित्यप्रति होते देखते हैं। इस प्रकार की घटनायें राष्ट्र के निर्माण में विघटन का उबाल उत्पन्न करने वाली होती हैं। इसका मुख्य कारण है कि महर्षि द्वारा कथित सभासदों के गुण इन सदस्यों में नहीं पाये जाते। सभासद के गुण आगे लिखे जायेंगे।

आगे महर्षि अपने मन्तव्य को इस प्रकार प्रकट करते हैं ''इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये। किन्तु राजा जो सभापति, तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।'' महर्षि के इन विचारों में मौलिक विचार प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। संसार का कोई

भी देश आज तक इस प्रकार के संविधान की व्यवस्था न कर सका, यह कितने विस्मय की बात है। महर्षि दयानन्द यहाँ कहते है कि सभा राजा के आधीन हो। इससे सभा के सदस्य अपनी इच्छा से राजद्रोह आदि कार्य नहीं कर सकते तथा साथ में राजा भी उस सभा के आधीन होगा, इससे राजा की निरंकुशता पर प्रतिबन्ध लग जाता है। इस प्रकार कोई भी कार्य उसी समय पूर्ण समझा जाता है जबकि उस की स्वीकृति राजा तथा सभा दोनों एकमत होकर दें।

ऐसा समय भी आ सकता है जबकि राजा तथा सभा दोनों मिलकर राष्ट्र को हानि पहुँचाने का गुप्त प्रयत्न करें। इस अवस्था को रोकने के लिए महर्षि ने लिखा है कि राजा तथा सभा दोनों प्रजा के आधीन होने चाहिएँ। प्रजा भी अपने इस महत्त्व का कहीं अनुचित लाभ न उठा ले, अतः उन्होंने पुनः कहा कि प्रजा राजसभा के आधीन हो। इस प्रकार महर्षि ने राज्यचक्र स्थापित किया है, जिससे राष्ट्र का प्रत्येक अंग स्वतन्त्र न होकर एक-दूसरे के आधीन है।

महर्षि जी ने धर्म को प्रधानता प्रदान करते हुए विद्यासभा, धर्मसभा तथा राजसभा (न्यायसभा) तीन सभायें स्वीकृत की हैं।

सभाध्यक्ष

इन तीनों सभाओं के अध्यक्ष किन गुणों से समन्वित हों, इस बात का परिचय देना भी महर्षि जी नहीं भूले; उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा-

तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूं षि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्।।
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः।।

अर्थात् जो सूर्यवत् प्रतापी होकर अपने तेज से सब मनुष्यों के बाहर एवं भीतर दोनों को तपाने वाला हो, जिसको पृथ्वी पर कड़ी दृष्टि से देखने में कोई भी समर्थ न हो। जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा के समान हो। धर्म-प्रकाशक, धन-वर्धक, दुष्टों का दमन करनेवाला तथा बड़े ऐश्वर्यवाला हो, वही सभाध्यक्ष होना ठीक है, परन्तु आज के भारत में सभाध्यक्ष बनाते समय इन बातों का कोई भी ध्यान नहीं रखता। आजकल तो दलों की दल-दल में फँसकर बुद्धिमान् सदस्य भी बहुश्रुत को छोड़कर अल्पश्रुत को सभाध्यक्ष बना डालते हैं। इस प्रकार के अध्यक्ष अपने दल के सदस्यों की कठपुतली ही बने रहते हैं, क्योंकि उनमें स्वतन्त्र विचार की कमी होती है।

सच्चा राजा दण्ड

महर्षि दयानन्द आलंकारिक रूप में दण्ड को ही सच्चा राजा बतलाते हैं, क्योंकि हम दैनिक जीवन में देखते हैं कि राजा से भय खाने का अर्थ लोग उसके द्वारा मिलने वाले दण्ड से लेते हैं। दण्ड के विषय को लेकर संस्कृत-साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है। कौटिल्य अर्थ-शास्त्र में अनेक आचार्यों के मत निर्देशन के अध्याय में लिखा गया है

''आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः''

अर्थात् आन्वीक्षिकी (न्याय-विद्या) त्रयी (वेद-विद्या) और वार्ता (कृषि, पशुपालन एवं व्यापार) इनके सुचारु रूप से संचालन के लिए दण्ड ही एकमात्र समर्थ है। आगे चलकर इसी प्रसंग में कहा है **''तस्यामायत्ता लोकयात्रा''** अर्थात् इस दण्ड नीति के आधीन ही सारी संसार-यात्रा है, परन्तु कौटिल्य इस नीति के विपक्ष में अपना मत देते हुए कहते हैं-

''नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनाय।
मृदुदण्डः परिभूयते। यथार्थदण्डः पूज्यः।''

अर्थात् तीक्ष्ण दण्ड देने से प्रजा उखड़ जाती है और जो राजा थोड़ा और मृदु दण्ड देता है, लोग उसका तिरस्कार करने लग जाते हैं। इससे राजा को उचित है कि वह दण्ड का उचित प्रयोग करे। महर्षि दयानन्द ने भी अपने सत्यार्थप्रकाश में इनसे मिलते-जुलते विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने लिखा है ''कि जहाँ दण्ड सारी प्रजा को शासन में रखता है, वहाँ उसका सदुपयोग ही एकमात्र मुख्य कारण है-

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वाः रंजयति प्रजाः।।

अर्थात् भली प्रकार सोच-समझ कर दिया गया दण्ड सदा प्रजा को प्रसन्न रखता है । यदि इस दण्ड का उचित प्रयोग न किया जाय तो यह सर्व प्रकार से राजा को नष्ट कर देता है। महर्षि ने अपने सत्यार्थप्रकाश में यह लिखकर कि-**''यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा''** दण्ड का मानवीकरण किया है। मानवीकरण के साथ-साथ यह

श्लोक शब्द-चित्र का भी सुन्दर दृष्टान्त है। यहाँ दण्ड को श्याम वर्ण कहकर उसकी भयानकता का दिग्दर्शन कराया गया है। तथा लोहिताक्ष कहकर दण्ड के क्रोधी स्वभाव का परिचय दिखाया गया।

परन्तु यह कृष्ण वर्ण, लोहिताक्ष दण्ड किस प्रकार के राजा के वशीभूत होकर उसका सनातन सेवक रह सकता है-इस बात को महर्षि दयानन्द जी इस श्लोक से प्रकट करते हैं।

शुचिना सत्यसन्धेन यथा शास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता।।

अर्थात् जो पवित्रात्मा, सत्याचरणी, सज्जन पुरुषों का संगी, यथावत् नीति-शास्त्र के अनुकूल चलने वाला और श्रेष्ठ पुरुषों की सहायता युक्त बुद्धिमान् राजा होता है वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है। इस श्लोक में ''सुसहायेन'' शब्द प्रत्यक्ष रूप से यह इंगित करता है कि राजा को अपने मन्त्रियों से भी दण्ड देते समय मन्त्रणा करना अनिवार्य है। यदि मन्त्रियों से विचार-विमर्श न किया गया तो राज्य में अराजकता फैल जायेगी और ''मत्स्यन्याय'' आरम्भ हो जाएगा। इस न्याय के आधार पर जिस प्रकार समुद्र में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, उसी प्रकार बलवान मनुष्य निर्बल को हड़प कर जाएगा।

मन्त्री परिषद् की संख्या

राजा की सलाहकार सभा के सदस्य तीन से लेकर दस तक होने चाहिएँ ऐसा महर्षि अपने सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं, परन्तु महर्षि जी ने इनकी संख्या इतनी ही क्यों हो-इसमें कोई कारण तथा तर्क उपस्थित नहीं किया। इसकी पुष्टि के लिये हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आश्रय लेना होगा। अर्थशास्त्र में लिखा है-

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां शृणुयान्मतम्।।

अर्थात् राज्य का रथ अकेले राजा के एक पहिये से नहीं चल सकता। इसको मन्त्रीरूपी दूसरे चक्र की आवश्यकता है। अतः यह बात सोचकर राजा को मन्त्री अवश्यमेव रखने चाहिएँ और समय पर वह उनके विचारों को ध्यानपूर्वक सुने। यदि मन्त्री संख्या में एक ही होगा तो वह अपनी इच्छानुसार चलकर राष्ट्र को नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। न ही राजा को दो मन्त्री रखने उचित हैं, क्योंकि यदि वे दोनों मन्त्री परस्पर एकमत हो जायें तो उस समय राजा का उचित रूप से मन्त्र सिद्ध नहीं होता। अतः कम से कम तीन और अधिक से अधिक दस मन्त्री होने चाहिएँ। ये मन्त्री किस योग्यता के हों, इसे महर्षि जी निम्न प्रकार कहते हैं-

मौलान् शास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।
सचिवान्सप्त चाष्टो वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।।

अर्थात् स्वराज्य में उत्पन्न, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, शूर, वीर, लक्ष्य से भ्रष्ट न होने वाला कुलीन और जिनकी प्रथम संकटकाल में परीक्षा की जा चुकी हो, ऐसे मन्त्री होने चाहिएँ, परन्तु आज के युग में मन्त्रियों की क्या कसौटी है, यह जानना नितान्त दुर्लभ है।

अध्यक्ष और सदस्य होने की योग्यता

प्राचीनकाल में अध्यक्ष तथा सदस्यों के लिये ''कोड आफ कन्डक्ट'' अर्थात् ''आचारसंहिता'' का भी विधान था। यदि इस ''आचारसंहिता'' के नियमों के अनुरूप कोई व्यक्ति पूरा उतरता है तो वह अध्यक्ष तथा सदस्य होने के योग्य है, अन्यथा नहीं। महर्षि सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट लिखते हैं-

त्रविद्याऽभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः।।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।

अर्थात् अध्यक्ष और राजसभा के सभासद् उसी समय हो सकते हैं, जबकि वे चारों वेदों की कर्म, उपासना और ज्ञान-विद्या के जाननेवालों से तीनों विद्या, राजकीय कार्यों में प्रयुक्त होने वाली शाश्वत दण्डनीति, न्याय-विद्या, आत्म-विद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव-वाली ब्रह्म-विद्या तथा लोगों से वार्ताओं का प्रारम्भ (कहना और पूछना) सीख लें, इसी अवस्था में सभापति तथा सदस्य होने का अधिकारी है।

उपरिवर्णित गुणों का प्रत्येक सदस्य में अनिवार्य मेल होना चाहिये, क्योंकि जिन सदस्यों को मिलकर राष्ट्र-निर्माण का कार्य करना है वे अवश्यमेव राष्ट्र-सम्बन्धी नीतियों और व्यापारों के वेत्ता तथा पारदर्शी होने चाहिएँ। इसके अतिरिक्त महर्षि जी कहते हैं कि सदस्यों में कुछ

बातें नहीं भी होनी चाहिएं।

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।

अर्थात् काम से उत्पन्न होने वाले अवगुण, जैसे- मृगया खेलना, अक्षों का खेल, दिन में सोना, काम-कथा, स्त्रियों का अतिसंग, मादक द्रव्य, गाना, बजाना, नाचना, और वृथा इधर-उधर घूमना ये दश कामज अवगुण सदस्यों में नहीं होने चाहिएँ तथा क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ व्यसन अर्थात् किसी की चुगली करना, चोरी तथा परस्त्री-हरण, द्रोह रखना, ईर्ष्या, असूया, अर्थ-दूषण अर्थात् धन को बुरे कार्यों में लगाना और कठोर वचन सहित बिना अपराध के दण्ड देना इन अवगुणों को सदस्य और अध्यक्ष त्याग दे, परन्तु आज भारतवासी इन अवगुणों को ही गुण मान बैठे हैं। आज सांस्कृतिक समारोहों का ढोंग रचकर अनैतिकता का प्रचार हो रहा है। क्या गाना-बजाना ही एकमात्र सांस्कृतिक कार्य होता है?

योजना (स्कीम)

राजा अपने राज्य को ठीक रखने के लिये कुछ योजनायें बनाये। राजा की इस योजना के आधारस्तम्भ मंत्री, दूत और चर होते हैं। मन्त्रियों के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। यहाँ अब दूतों और चरों के विषय में महर्षि द्वारा मान्य विचार प्रस्तुत किये जाते हैं।

दूत तथा चर

वस्तुतः दूत सन्धि में बँधे राष्ट्रों को विग्रहयुक्त और विग्रहयुक्त राष्ट्रों को सन्धि संयुक्त कर सकता है। वह अपनी नीति द्वारा प्रतिपक्षियों के संगठन को छिन्न-भिन्न कर सकता है। अतः राजा को बहुत विचार-विनिमय के उपरान्त दूतों की नियुक्ति करनी चाहिये। ये गुण, कर्म, स्वभाव एवं बुद्धि के अनुसार तीन प्रकार के होते हैं (१) निसृष्टार्थ (२) परिमितार्थ तथा (३) शासनहर। इन दूतों से राजा अपने मित्र, उदासीन एवं शत्रु राजाओं से समयानुसार सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव आदि षड्गुणों का व्यवहार करे। इन दूतों की नियुक्ति देश से बाहर होती है, परन्तु अपने ही देश में राजद्रोहियों को गतिविधि का निरीक्षण करने के लिए राजा गुप्तचरों का जाल भी बिछाये।

योजना का मुख्य अंग सैन्य-संचालन भी है, सैन्य-संचालन के अभाव में ही उपूसी और लद्दाख में भारतीय सेनाओं को अतीव क्षति उठानी पड़ी। राजा तथा सेनापति किस परिस्थिति में किस प्रकार की व्यूह रचना करें, इसका विस्तृत वर्णन भी सत्यार्थप्रकाश में है।

राज्य-प्रबन्ध

राज्य की सुव्यवस्था के लिए राजा अपने राज्य में कम से कम अट्ठारह विभाग स्थापित करे। इन अट्ठारह विभागों के अध्यक्ष नीति धर्मपूर्वक सदा तत्पर रहकर कार्य करें। इसके साथ-साथ राजा अपने राज्य में प्रजा की सुविधा के लिये राज्य से सम्बन्धित इकाइयाँ स्थापित करे। इस बात को महर्षि जी अपने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखते हैं-

द्वयोस्त्रयाणां पंचानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद् राष्ट्रस्य संग्रहम्।।

अर्थात् दो, तीन, पाँच और सौ ग्रामों के मध्य एक राज-स्थान रखे। यहाँ राज-स्थान से अभिप्राय तहसील, थाना आदि से लिया जाना उपयुक्त है। इसी क्रम से राजा गाँव में नम्बरदार, तीन-चार गाँवों के मध्य जेलदार आदि अधिकारियों की नियुक्ति करे। राजा इन अधिकारियों पर निरन्तर दृष्टि रखे, ऐसा न हो कि ये अधिकारी व्यर्थ में प्रजा को सताते रहें । राज्य-प्रबन्ध की सफलता के लिये राजा अपराधियों को अपराधानुसार दण्ड देता रहे। राजा अर्थव्यवस्था के लिये प्रजा से कर भी ले, परन्तु वह कर प्रजा पर भाररूप न हो।

इससे आगे महर्षि जी प्रश्नोत्तर विधि का आश्रय लेकर अपने विचारों को प्रकट करते हैं। यदि राजा या उसकी पत्नी राज्य के विरुद्ध व्यवहार करे तो इस विषम परिस्थिति में क्या होना चाहिए। इस समस्या का समाधान महर्षि जी ने सफलतापूर्वक यह कहकर कर दिया कि उनको राज्यसभा दण्ड दे। उन्हें राज्यसभा का दण्ड अनिवार्य रूप से मानना पड़ेगा।

इस प्रकार हम देखेंगे कि महर्षि दयानन्द राजनीति के विषय में स्वतन्त्र एवं मौलिक विचारों के उद्घोषक हैं। उनकी यह घोषणा इस बात से और भी पुष्ट होती है कि अच्छे से अच्छे विदेशी शासन की अपेक्षा मूर्ख राजा के आश्रित स्वदेशी शासन उत्तम है।

महर्षि दयानन्द जन्मदिवस (फाल्गुन कृष्ण १०) पर विशेष

महर्षि दयानन्द और युगान्तर

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (हिन्दी के महाकवि)

कवि स्वभाव से ही बागी होता है। काव्य-कला के नियम भी उस पर बन्दिश न लगा पाते हैं। बगावत अगर सत्य की स्वीकृति हो तो कविता का ही दूसरा नाम बन जाती है। भला बगावत के बगैर कविता का चरित्र ही क्या है? कवि के भावों की सजावट कविता है और चरित्र की बगावत कवि-ता। इस लेख में कवि-ता ऋषि को प्रणाम करने आयी है और कविता पुष्प बरसाने। और यह अधिकार मिला है महाकवि निराला को, कि वे अपनी कलम तोड़ दें और दवात फोड़ दें। निस्सन्देह यह अवसर 'निराला' ने हाथ से जाने न दिया।

परोपकारी ऋषि के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में यह लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता है। जिसमें एक ओर ऋषि के चरित्र का दर्शन करेंगे तो दूसरी ओर साहित्य का आनन्द भी ले सकेंगे।-सम्पादक

उन्नीसवीं सदी का परार्द्ध भारत के इतिहास का अपर स्वर्ण प्रभात है। कई पावन-चरित्र महापुरुष अलग-अलग उत्तरदायित्व लेकर, इस समय, इस पुण्य भूमि में अवतीर्ण होते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती भी इन्हीं में एक महाप्रतिभामंडित महापुरुष हैं।

हम देखते हैं, हमें इतिहास भी बतलाता है, समय की एक आवश्यकता होती है। उसी के अनुसार धर्म अपना स्वरूप ग्रहण करता है। हम अच्छी तरह जानते हैं, ज्ञान सदा एकरस है, वह काल के बन्धन से बाहर है और चूंकि वेदों में मनुष्य जाति की प्रथम तथा चिरन्तन ज्ञान-ज्योति स्थित है, इसलिए उसके परिवर्तन की आवश्यकता सिद्ध नहीं होती, बल्कि परिवर्तन भ्रमजन्य भी कहा जा सकता है। पर साथ-साथ, इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि उच्चतम ज्ञान किसी भी भाषा में हो, वह अपौरुषेय वेद ही है। परिवर्तन उसके व्यवहार-कौशल, कर्म-काण्ड आदि में होता है, हुआ भी है। इसे ही हम समय की आवश्यकता कहते है। भाषा जिस प्रकार अर्थ-साम्य रखने पर भी स्वरूपतः बदलती गई है, अथवा भिन्न देशों में, भिन्न परिस्थितियों के कारण अपर देशों की भाषा से बिल्कुल भिन्न प्रतीत होती है। इसी प्रकार धर्म भी समयानुसार जुदा-जुदा रूप ग्रहण करता गया है। भारत के लिए वह विशेष रूप से कहा जा सकता है। बुद्ध, शंकर, रामानुज आदि के धर्ममत-प्रवर्त्तन सामयिक प्रभाव को ही पुष्ट करते हैं। पुराण इसी विशेषता के सूचक हैं। पौराणिक विशेषता और मूर्त्तिपूजन आदि से मालूम होता है, देश के लोगों की रुचि अरूप से रूप की ओर ज्यादा झुकी थी। इसीलिए वैदिक अखण्ड ज्ञान-राशि को छोड़कर ऐश्वर्ययुगपूर्ण एक-एक प्रतीक लोगों ने ग्रहण किया। इस तरह देश की तरक्की नहीं हुई, यह बात नहीं। पर इस तरह देश ज्ञानभूमि से गिर गया, यह बात भी है। **जो भोजन शरीर को पुष्ट करता है, वही रोग का भी कारण होता है। मूर्त्तिपूजन से इसी प्रकार दोषों का प्रवेश हुआ। ज्ञान जाता रहा। मस्तिष्क से दुर्बल हुई जाति औद्धत्य के कारण छोटी-छोटी स्वतन्त्र सत्ताओं में छँटकर एक दिन शताब्दियों के लिए पराधीन हो गई।** उसका वह मूर्त्तिपूजन-संस्कार बढ़ता गया, धीरे-धीरे वह ज्ञान से बिल्कुल ही रहित हो गई। शासन बदला, अँग्रेज आए। संसार की सभ्यता एक नये प्रवाह से बही। बड़े-बडे पण्डित विश्व-साहित्य, विश्व-ज्ञान, विश्व-मैत्री की आवाज उठाने लगे, पर भारत उसी प्रकार पौराणिक रूप के माया-जाल में भूला रहा। **इस समय ज्ञान-स्पर्धा के लिए समय की फिर आवश्यकता हुई और महर्षि दयानन्द का यही अपराजित प्रकाश है। वह अपार वैदिक ज्ञान राशि के आधार-स्तम्भ-स्वरूप अकेले बडे-बड़े पण्डितों का सामना करते हैं।** एक ही आधार से इतनी बड़ी शक्ति का स्फुरण होता है कि आज भारत के युगान्तर साहित्य में इसी की सत्ता प्रथम है, यही जनसंख्या में बढ़ी हुई है।

चरित्र, स्वास्थ्य, त्याग, ज्ञान और शिष्टता आदि में जो आदर्श महर्षि दयानन्दजी महाराज में प्राप्त होते हैं, उनका लेशमात्र भी अभारतीय पश्चिमी शिक्षा-संभूत नहीं, पुनः ऐसे आर्य में ज्ञान तथा कर्म का कितना

प्रसार रह सकता है, वह स्वयं इसके उदाहरण हैं। मतलब यह है कि जो लोग कहते हैं कि वैदिक अथवा प्राचीन शिक्षा द्वारा मनुष्य उतना उन्नतमना नहीं हो सकता, जितना अंग्रेजी शिक्षा द्वारा होता है, महर्षि दयानन्द सरस्वती इसके प्रत्यक्ष खण्डन हैं। **महर्षि दयानन्दजी से बढ़कर भी मनुष्य होता है, इसका प्रमाण प्राप्त नहीं हो सकता।** यही वैदिक ज्ञान की मनुष्य के उत्कर्ष में प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है, यही आदर्श आर्य हमें देखने को मिलता है।

यहाँ से भारत के धार्मिक इतिहास का एक नया अध्याय शुरू होता है, यद्यपि वह बहुत प्राचीन है। हमें अपने सुधार के लिए क्या-क्या करना चाहिये, हमारे सामाजिक उन्नयन में कहाँ-कहाँ और क्या-क्या रुकावटें, हमें मुक्ति के लिए कौन-सा मार्ग ग्रहण करना चाहिये, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बहुत अच्छी तरह समझाया है। **आर्यसमाज की प्रतिष्ठा भारतीयों में एक नये जीवन की प्रतिष्ठा है, उसकी प्रगति एक दिव्य शक्ति की स्फूर्ति है। देश में महिलाओं, पतितों तथा जाति-पाँति के भेद-भाव मिटाने के लिये महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज से बढ़कर इस नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया। आज जो जागरण भारत में दीख पड़ता है उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्यसमाज को है। स्वधर्म में दीक्षित करने का यहाँ इसी समाज से श्रीगणेश हुआ है। भिन्न जातिवाले बन्धुओं को उठाने तथा ब्राह्मण-क्षत्रियों के प्रहारों से बचाने का उद्यम आर्यसमाज ही करता रहा है।** शहर-शहर, जिले-जिले, कस्बे-कस्बे में इसी उदारता के कारण, आर्यसमाज की स्थापना हो गई। राष्ट्रभाषा हिन्दी के भी स्वामीजी एक प्रवर्तक हैं और आर्यसमाज के प्रचार की तो यह भाषा ही रही है। शिक्षण के लिये 'गुरुकुल' जैसी संस्थाएँ निर्मित की गईं। एक नया ही जीवन देश में लहराने लगा।

स्वामीजी के प्रचार के कुछ पहले ब्राह्मसमाज की कलकत्ता में स्थापना हुई थी। राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित ब्राह्म- धर्म की प्रतिष्ठा, वैदान्तिक बुनियाद पर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर कर चुके थे। वहाँ इसकी आवश्यकता इसलिये हुई थी कि अंग्रेजी सभ्यता की दीप-ज्योति की ओर शिक्षित नवयुवकों का समूह पतंगों की तरह बढ़ रहा था, पुनः शिक्षा तथा उत्कर्ष के लिये विदेश की यात्रा अनिवार्य थी, इसलिए लौटने पर वे शिक्षित युवक यहाँ ब्राह्मणों द्वारा धर्म-भ्रष्ट कहकर समाज से निकाल दिये जाते थे, इसलिए वे ईसाई हो जाते थे, उन्हें देश के ही धर्म में रखने की जरूरत थी। इसी भावना पर ब्राह्मधर्म की प्रतिष्ठा तथा प्रसार हुआ। विलायत में प्रसिद्धि प्राप्त कर लौटने वाले प्रथम भारतीय वक्ता श्रीयुत केशवचन्द्र सेन भी ब्राह्मधर्म के प्रवर्तकों में एक हैं। इन्हीं से मिलने के लिए स्वामीजी कलकत्ता गये थे। यह जितने अच्छे विद्वान् अंग्रेजी के थे, इतने अच्छे संस्कृत के न थे। इनसे बातचीत में स्वामीजी सहमत नहीं हो सके। कलकत्ता में आज ब्राह्मसमाज मन्दिर के सामने कार्नवालिस स्ट्रीट पर विशाल आर्यसमाज मन्दिर भी स्थित है।

किसी दूसरे प्रतिभाशाली पुरुष से और जो कुछ उपकार देश तथा जाति का हुआ हो, सबसे पहले वेदों को स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने ही हमारे सामने रक्खा। हम आर्य हों, हिन्दू हों, ब्राह्मसमाज वाले हों, यदि हमें ऋषियों की सन्तान होने का सौभाग्य प्राप्त है और इसके लिए हम गर्व करते हैं, तो कहना होगा कि ऋषि दयानन्द से बढ़कर हमारा उपकार इधर किसी भी दूसरे महापुरुष ने नहीं किया, जिन्होंने स्वयं कुछ भी न लेकर हमें अपार ज्ञान-राशि वेदों से परिचित कर दिया।

देश में विभिन्न मतों का प्रचलन उसके पतन का कारण है, स्वामी दयानन्दजी की यह निर्भ्रान्त धारणा थी। उन्होंने इन मत-मतान्तरों पर सप्रमाण प्रबल आक्षेप भी किये हैं। उनकी इच्छा थी कि इस मतवाद के अज्ञान-पंक से देश को निकालकर वैदिक शुद्ध शिक्षा द्वारा निष्कलंक कर दें।

वाममार्ग वाले तान्त्रिकों की मन्द वृत्तियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन आदि वेद-विरुद्ध महाअधर्म कार्यों को वाममार्गियों ने श्रेष्ठ माना है। जो वाममार्गी कलार के घर बोतल पर बोतल शराब चढ़ावें और रात्रि को वारांगना से दुष्कर्म करके उसी के घर सोवें, वह वाममार्गियों में श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा के समान है। स्त्रियों के प्रति विशद कोई भी विचार उनमें नहीं। स्वामीजी देशवासियों को विशुद्ध वैदिक धर्म में दीक्षित हो आत्मज्ञान ही-सा उज्ज्वल और पवित्र कर

देना चाहते थे। स्वामी विवेकानन्द ने भी वामाचार-भक्त देश के लिये विशुद्ध भाव वाले वैदान्तिक धर्म का उपदेश दिया है।

आपने गुरु परम्परा को भी आड़े हाथों लिया है। योगसूत्र के **'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** के अनुसार, आप केवल ब्रह्म को ही गुरु स्वीकार करते हैं। रामानुज जैसे धर्माचार्य का भी मत आपको मान्य नहीं, और बहुत कुछ युक्तिपूर्ण भी जान पड़ता है। आपका कहना है कि लक्ष्मीयुक्त नारायण की शरण जाने का मन्त्र धनाढ्य और माननीयों के लिए बनाया गया-यह भी एक दुकान ठहरी।

मूर्ति-पूजन के लिए आपका कथन है कि जैनियों की मूर्खता से इसका प्रचलन हुआ। तान्त्रिक तवा वैष्णवों ने भिन्न मूर्तियों तथा पूजनोपचारों से अपनी एक विशेषता प्रतिष्ठित की है। जैनी वाद्य नहीं बजाते थे, ये लोग शंख, घण्टा, घड़ियाल आदि बजाने लगे। अवतार आदि पर भी स्वामीजी विश्वास नहीं करते। **'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** आदि-आदि प्रमाणों से ब्रह्म का विग्रह नहीं सिद्ध होता, उनका कहना है।

ब्राह्मणों की ठग-विद्या के सम्बन्ध में भी स्वामीजी ने लिखा है-आज ब्राह्मणों की हठपूर्ण मूर्खता से अपरापर जातियों को क्षति पहुँच रही है। पहले पढ़े-लिखे होने के कारण ब्राह्मणों ने श्लोकों की रचना कर-करके अपने लिये बहुत काफी गुंजाइश कर ली थी। उसी के परिणामस्वरूप वे आज तक पुजाते चले जा रहे हैं। स्वामीजी एक मन्त्र का उल्लेख करते हैं-

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्।।

अर्थात् सारा संसार देवताओं के अधीन है, देवता मन्त्रों के अधीन हैं, वे मन्त्र ब्राह्मणों के अधीन हैं, इसलिये ब्राह्मण ही देवता है। लोगों से पुजाने का यह पाखण्ड बड़ी ही नीच मनोवृत्ति का परिचय है।

स्वामीजी ने शैव, शाक्त और वैष्णव आदि मतों की खबर तो ली ही है, हिन्दी-साहित्य के महाकवि कबीर तथा दादू आदि को भी बहुत बुरी तरह फटकारा है। आपका कहना है-पाषाणादि को छोड़ पलंग, गद्दी, तकिये, खड़ाऊं, ज्योति अर्थात् दीप आदि का पूजना पाषाण-मूर्ति से न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनगा था, वा कली था, जो फूल हो गया? जुलाहे का काम करता था, किसी पण्डित के पास पढ़ने के लिए गया, उसने उसका अपमान किया। कहा, हम जुलाहे को नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पण्डितों के पास फिरा, परन्तु किसी ने न पढ़ाया, तब ऊट-पटाँग भाषा बनाकर जुलाहे आदि लोगों को समझाने लगा। तंबूरे लेकर गाता था, भजन बनाता था, विशेष पण्डित, शास्त्र, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फँस गये। जब मर गये, तब सिद्ध बना लिया। जो-जो उसने जीते-जी बनाया था, उसको उसके चेले पढ़ते रहे। कान को मूँदकर जो शब्द सुना जाता है, उसको अनहद शब्द सिद्धान्त ठहराया। मन की वृत्ति को सूरति कहते हैं उसको उस शब्द के सुनने में लगाया, उसी को संत और परमेश्वर का ध्यान बतलाते है, वहाँ काल नहीं पहुँचता। बर्छी के समान तिलक और चंदनादि लकड़ी की कंठी बाँधते है। भला विचार के देखो, इसमें आत्मा की उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है?

इसी प्रकार नानकजी के सम्बन्ध में भी आपने कहा है कि उन्हें संस्कृत का ज्ञान न था, उन्होंने वेद पढ़ने वालों को तो मौत के मुँह में डाल दिया है और अपना नाम लेकर कहा है कि नानक अमर हो गये-वह आप परमेश्वर है। जो वेदों की कहानी कहता है, उसकी कुल बाते कहानियाँ हैं। मूर्ख, साधु वेदों की महिमा नहीं जान सकते। यदि नानकजी वेदों का मान करते, तो उनका अपना सम्प्रदाय न चलता, न वह गुरु बन सकते थे, क्योंकि संस्कृत नहीं पढ़ी थी, फिर दूसरों को पढ़ाकर शिष्य कैसे बनाते, आदि-आदि। दादू पंथ को भी आप इसी प्रकार फटकारते हैं। शिक्षा, मार्जन तथा अपौरुषेय ज्ञान-राशि वेदों का आपका पक्ष है। मत-मतान्तरों के स्वल्प जल में यह आत्मतर्पण नहीं करते। वहाँ उन्हें महत्ता नहीं दीख पड़ती। पुनः भाषा में अधूरी कविता करके ज्ञान का परिचय देने वाले अल्पाधार साधुओं से पण्डित श्रेष्ठ स्वामीजी तृप्त भी कैसे हो सकते थे? इन अशिक्षित या अल्पशिक्षित साधुओं ने जिस प्रकार वेदों की निन्दा कर-कर मूढ़ जनों में वेदों के प्रतिकूल विश्वास पैदा कर दिया था, उसी प्रकार नव्य युग के तपस्वी महर्षि ने भी उन सबको धता बताया और विज्ञों को ज्ञानमय कोष वेदों की शिक्षा के

लिए आमन्त्रित किया। स्वामीनारायण के मत के विषय पर आप कहते हैं-'**यादृशी शीतलादेवी तादृशो वाहनः खरः** जैसी गुसाईं जी की धन-हरणादि में विचित्र लीला है वैसी ही स्वामीनारायण की भी है।' माध्व मत के संबन्ध में आपका कथन है-जैसे अन्य मतावलम्बी हैं वैसा ही माध्व भी है, क्योंकि ये भी चक्रांकित होते हैं, इनमें चक्रांकितों से इतना विशेष है कि रामानुजीय एक बार चक्रांकित होते हैं, और ये वर्ष-वर्ष फिर-फिर चक्रांकित होते जाते है, वे चक्रांकित कपास में पीली रेखा और माध्व काली रेखा लगाते हैं। एक माधव पण्डित से किसी एक महात्मा का शास्त्रार्थ हुआ था। (महात्मा) तुमने यह काली रेखा और चांदला (तिलक) क्यों लगाया? (शास्त्री) इसके लगाने से हम बैकुण्ठ को जायेंगे और श्रीकृष्ण का भी शरीर श्याम रंग था, इसलिए हम काला तिलक करते हैं। (महात्मा) जो काली रेखा और चांदला लगाने से बैकुण्ठ में जाते हो तो सब मुख काला कर लेओ तो कहाँ जाओगे?

स्वामीजी के व्यंग्य बड़े उपदेशपूर्ण हैं। आर्य-संस्कृति के लिए आपने निःसहाय होकर भी दिग्विजय किया और उसकी समुचित प्रतिष्ठा की। स्वामीजी का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा की ओर नहीं देखा, वेदों की प्रतिष्ठा की है। ब्राह्म-समाज और प्रार्थनासमाज के संबन्ध में आपका कहना है-'ब्राह्म-समाज' और 'प्रार्थना समाज' के नियम सर्वांश में अच्छे नहीं, क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्म समाज, और प्रार्थना समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया और कुछ-कुछ पाषाण आदि मूर्तिपूजा से हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दे से भी कुछ बचाया इत्यादि अच्छी बात है, परन्तु इन लोगों में स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है, ईसाइयों के आचरण बहुत से लिए हैं। खान-पान-विवाहादि के नियम भी बदल गये हैं। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही उसके स्थान में पेट-भर निन्दा करते हैं, व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भर-पेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ, आर्यावर्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं, उनकी उन्नति कभी नहीं हुई। वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते, ब्रह्मसमाज के उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में 'ईसा', 'मूसा', 'मुहम्मद', 'नानक' और 'चैतन्य' लिखे हैं, किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा।

आज शिक्षित सभी मनुष्य जानते हैं, भारत के अधःपतन का मुख्य कारण नारी-जाति का पीछे रह जाना है, वह जीवन-संग्राम में पुरुष का साथ नहीं दे सकती, पहले से ऐसी निरवलंब कर दी जाती है कि उसमें कोई क्रियाशीलता नहीं रह जाती। पुरुष के न रहने पर सहारे के बिना तरह-तरह की तकलीफें झेलती हुई वह कभी-कभी दूसरे धर्म को स्वीकार कर लेती है, आदि-आदि। पं. लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़ जैसे पुराने और नये पण्डित अनुकूल तर्कयोजना करते हुए, प्रमाण देते हुए यह नहीं जानते कि भारत की स्त्रियाँ उनके पराधीन काल में भी किसी तरह दूसरे देशों की स्त्रियों से उचित शिक्षा, आत्मोन्नति, गार्हस्थ्य सुख-विज्ञान, संस्कृति आदि में घटकर है। इसी तरह धर्म और जाति के संबन्ध में उनकी वाक्यावली, आज के अंग्रेजी शिक्षित युवकों को अधूरी जँचने पर भी, निरपेक्ष समीक्षकों के विचार में मान्य ठहरती है। फिर भी, हमें यहाँ देखना है कि आजकल के नवयुवक समुदाय से महर्षि दयानन्द, अपनी वैदिक प्राचीनता लिए हुए भी, नवीन सहयोग कर सकते हैं या नहीं। इससे हमें मालूम होगा हमारे देश के ऋषि जो हजारों शताब्दियों पहले सत्य-साक्षात्कार कर चुके हैं, आज की नवीनता से भी नवीन है क्योंकि सत्य वह है जो जितना ही पीछे है, उतना ही आगे भी, जो सबसे पहले दृष्टि के सामने है वही सबसे ज्यादा नवीन है।

ज्ञान की ही हद में सृष्टि की सारी बातें हैं । सृष्टि की अव्यक्त अवस्था भी ज्ञान है। स्वामीजी वेदाध्ययन में अधिकारी-भेद नहीं रखते। वह सभी जातियों की बालिकाओं-विद्यार्थिनियों को वेदाध्ययन का अधिकार देते हैं। यहाँ यह स्पष्ट है कि ज्ञानमय कोष चाहे वह जड़-विज्ञान से संबन्ध रखता हो, धर्म-विज्ञान से-नारियों के लिए युक्त है, वे सब प्रकार से आत्मोन्नति करने की अधिकारणी हैं। इस विषय पर आप 'सत्यार्थप्रकाश' में एक मन्त्र उद्धृत करते हैं-

'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।'

यजु. अ. २६। २

'परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो। यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन-शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है, स्वी और शूद्रादि वर्णों का नहीं (उत्तर) **ब्रह्मराजन्याभ्याम्** इत्यादि देखो, परमेश्वर स्वयं कहता है, कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्याय) वैश्य (शूद्रार्य) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुनाकर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों को ग्रहण और बुरी बातों को त्याग करके दुःखों से छूटकर आनन्द को प्राप्त हों। कहिये, अब तुम्हारी बात मानें या परमेश्वर की? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है । इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा, वह नास्तिक कहावेगा है, क्योंकि **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है।

स्वामीजी ने वेद के उद्धरणों द्वारा सिद्ध किया है कि स्त्रियों की शिक्षा, अध्ययन आदि वेदविहित है। उनके लिए ब्रह्मचर्य के पालन का भी विधान है। **स्वामीजी की इस महत्ता को देखकर मालूम हो जाता है कि स्त्री समाज को उठाने वाले पश्चिमी शिक्षा-प्राप्त पुरुषों से वह बहुत आगे बढ़े हुए हैं। वह संसार और मुक्ति दोनों प्रसंगों में पुरुषों के ही बराबर नारियों को अधिकार देते हैं। इस एक ही वाक्य से साबित होता है कि किसी भी दृष्टि से वह नारी-जाति को पुरुष-जाति से घटकर नहीं मानते।**

आपका ही प्रवर्तन आर्यावर्त के अधिकांश भागों में, महिलाओं के अध्ययन के संबन्ध में प्रचलित है। यहाँ स्त्री-शिक्षा-विस्तार का अधिकांश श्रेय आर्यसमाज को दिया जा सकता है। यहाँ की शिक्षा की एक विशेषता भी है। महिलाएँ यहाँ जितने अंशों में देशी सभ्यता की ज्योति-स्वरूपा होकर निकलती हैं, उतने अंशों में दूसरी जगह नहीं। संस्कृति के भीतर से स्त्री के रूप में प्राचीन संस्कृति को ही स्वामीजी ने सामने खड़ा कर दिया है।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

२६ व २७ फरवरी २०२०	–	परोपकारिणी सभा का स्थापना दिवस
१७ से २४ मई २०२०	–	आर्यवीर दल शिविर
३१ मई से ०७ जून २०२०	–	आर्यवीरांगना दल शिविर
१४ से २१ जून २०२०	–	योग साधना स्वाध्याय शिविर
०४ से ११ अक्टूबर २०२०	–	योग साधना स्वाध्याय शिविर
०६ अक्टूबर २०२०	–	डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला
२० से २२ नवम्बर २०२०	–	ऋषि मेला (१३७वाँ बलिदान समारोह)

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

१९ फरवरी जन्मदिन पर

प्रजा के दुःख दर्द को समझने वाला राजा छत्रपति शिवाजी महाराज

कन्हैयालाल आर्य

शिवाजी के नाम से कौन व्यक्ति परिचित नहीं। शिवाजी की वीरता की कहानियाँ घर-घर प्रचलित हैं। बहुत थोड़े काल में शिवाजी ने एक स्वाधीन राज्य की स्थापना करके स्वयं को 'छत्रपति' शासक घोषित कर दिया। हमारे प्राचीन ऋषियों के विचारानुसार उनमें दैवी अंश अवश्य था। हमें शिवाजी की उच्च-कोटि की वह योग्यता देखने को मिलती है जो पंजाब केसरी रणजीत सिंह से लेकर अब तक के अन्य किसी भी हिन्दू शासक में नहीं पाई जाती। शिवाजी का नाम आज भी नवीन स्फूर्ति संचारित करता है और उनका आदर्श भविष्य में भी हमारे नवयुवकों में नवीन आशा का संचार करता रहेगा।

राजा तो अनेक हुए, परन्तु उन सभी राजाओं को इस प्रकार स्मरण नहीं किया जाता। उन राजाओं की जयन्ती अथवा पुण्यतिथि पर समारोह आयोजित नहीं किये जाते। अपवादस्वरूप किसी राज्य के किसी प्रदेश के कुछ निवासी ऐसा करते हों, परन्तु शिवाजी की जयन्ती जितने विस्तृत क्षेत्र में और अधिक अपार उत्साह, आशा और जोश के साथ मनायी जाती है, वैसी अन्य किसी राजा की नहीं।

शिवाजी के उत्थान के साथ ही आजकल के मराठों के जातीय जीवन का भी आरम्भ होता है। उन्होंने ही बलहीन, अप्रसिद्ध और बिखरे हुए लोगों को एकत्रित करके उन्हें शक्ति प्रदान की और उन्हें राष्ट्रीय एकता में गूँथकर आर्य (हिन्दुओं) के इतिहास में एक नई सृष्टि की रचना की। 'मराठा' जाति की जिस शाखा में शिवाजी का जन्म हुआ था, उसका कुल नाम 'भोंसले' था। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बहमनी साम्राज्य के टूटने के समय और उसके १०० वर्ष पश्चात् अहमनगर के निजामशाही राजवंश के शीघ्र ही नष्ट हो जाने से मराठों को एक बड़ा भारी अवसर मिला। देश की राजनैतिक अवस्था के कारण मराठा खेतिहरों के बहुत से बलवान्, चतुर और तीव्र पुरुषों ने हल छोड़कर तलवार पकड़ी और सैनिक व्यवसाय अपना लिया और वे जमींदार से राजा बनने लगे। एक कृषक का पुत्र किस प्रकार धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ अन्त में स्वतन्त्र राजा के पद को प्राप्त कर सकता है-इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं स्वयं शिवाजी।

जन्म एवं शिक्षा- शिवाजी का जन्म १९ फरवरी १६३० को माता जीजाबाई एवं पिता शाहजी के घर दूसरे पुत्र के रूप में हुआ। शिवाजी के जन्म से पहले जीजाबाई जुन्नर नगर के निकट शिवनेर के पहाड़ी किले में रहती थीं। माता जीजाबाई शिवाजी भवानी को अपनी आराध्य देवी मानती थीं। इस कारण इस पुत्र का नाम 'शिव' रखा, जो दक्षिणियों के उच्चारण के अनुसार 'शिवा' हो गया। मार्च १९३६ तक शाहजी का परिवार शिवनेरी किले में रहा। अक्टूबर १९३६ में शाहजी ने बीजापुर दरबार में नौकरी की। दरबार ने उन्हें चाकण से लेकर इन्द्रपुर और शिरबाल तक का प्रदेश जागीर रूप में दिया। शाहजी ने दादा कोंडदेव को जागीर का प्रबन्धक नियत किया और उनसे कहा, ''मेरी धर्मपत्नी जीजाबाई तथा मेरे पुत्र शिवाजी को अपने निरीक्षण में पूना में रखो।'' माता तथा पुत्र शाहजी से अलग रहने लगे। शिवाजी अकेला पिता के वात्सल्य प्रेम से वंचित हो पलने लगा। जीजाबाई उसके लिए सब कुछ थीं, वह उन्हें साक्षात् देवी की तरह पूजता था।

शिवाजी के अक्षरज्ञान की शिक्षा के विषय में कोई स्पष्ट प्रबल प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु इस शिक्षण के न होने से उनका हृदय तथा मन भावहीन और जड़ नहीं रहे। श्री रामदास, श्री तुकाराम तथा मुसलमान फकीरों की सत्संगति ने उनके अन्दर उदात्त भावनाओं का संचार कर दिया था। माता जीजाबाई की धार्मिक और वैराग्य प्रधान सात्त्विक प्रवृत्तियों ने शिवाजी के हृदय को आदर्शवाद का पुजारी बना दिया। बाल्यकाल की इस शिक्षा ने उन्हें युवावस्था में अपने स्वीकृत पथ से विचलित न होने दिया।

शिवाजी और महिलाओं का सम्मान- शिवाजी के युग और सामन्तशाही के पूरे दौर में महिलाओं की प्रतिष्ठा विशेषकर निर्धन महिलाओं की प्रतिष्ठा का कोई मूल्य नहीं था। ऐसे युग में शिवाजी का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न था।

रांझा के पटेल का प्रकरण प्रसिद्ध है। ग्राम-प्रमुख पटेल ने निर्धन कृषक की युवा पुत्री का दिन-दहाड़े अपहरण किया और उसे अपमानित किया। अपमानित जीवन जीने की अपेक्षा

उसने आत्महत्या कर ली। सारा ग्राम दु:खी हुआ, परन्तु सब चुप्पी साधे रहे। शिवाजी तक यह बात पहुँची। पटेल को पकड़कर पुणे लाया गया और उसके हाथ-पैर तुड़ा डाले। समस्त प्रजा आश्चर्य में डूब गई। निर्धन कन्या के सम्मान के लिए ठेकेदार पटेल को हुई कठोर सजा को देखकर प्रजा शिवाजी पर न्योछावर हो गई और प्रजा शिवाजी के कार्यों में सहयोग करने और उनके कार्यों की पूर्ति हेतु मरने-मारने को तैयार हो गई। राँझा के पटेल वाली घटना अपवाद नहीं है ऐसे और भी कई उदाहरण हैं-

(१) १६७८ में सकूजी गायकवाड़ नाम के सेनापति ने बेलबाड़ी किले को घेर लिया। उस किले की किलेदार सावित्रीबाई देसाई नाम की महिला ने २४ दिन तक युद्ध किया, परन्तु अन्त में सकूजी ने किले पर विजय प्राप्त की और विजयोन्माद में तथा बदले की भावना से सावित्री बाई से बलात्कार किया। यह समाचार सुनकर शिवाजी क्रोधाग्नि में जल उठे। उन्होंने सकूजी गायकवाड़ की आँखें निकलवा कर उसे आजीवन जेल में डाल दिया। शत्रु महिला पर भी किये गये अत्याचार को न सहकर, शिवाजी ने मातृशक्ति के प्रति सम्मान का भाव प्रकट कर, मित्र एवं शत्रु की दृष्टि में राजमाता जीजाबाई के यश को दिग्दिगन्त में चिरस्थायी कर दिया।

(२) शिवाजी जी को समाचार मिला कि उसके पुत्र सम्भा जी ने एक ब्राह्मण विवाहिता देवी पर बलात्कार कर उसका सतीत्व नष्ट किया है। शिवाजी इससे पहले भी सम्भा जी की स्वेच्छाचारिता की बातें सुन चुके थे। इस बलात्कार की घटना ने शिवाजी के मन्यु को प्रदीप्त कर दिया। पितृमोह और राजकर्त्तव्य में से शिवाजी ने राजकर्त्तव्य पालन किया और सम्भा जी को पन्हाला के किले में नज़रबन्द कर दिया। महाराणा प्रताप सिंह की भाँति शिवाजी को जीवनभर स्वातन्त्र्य-युद्धों में अपराजित होते हुए भी अन्त समय में पुत्र के भावी जीवन की चिन्ता के साथ राज्य की चिन्ता ने चिन्तित किया।

(३) कल्याण के सूबेदार की बहू को दरबार में प्रस्तुत किये जाने, उसके सम्बन्ध में अशोभनीय बातें न बोलकर और उसके साथ दुर्व्यवहार न करके उसे साड़ी-चूड़ी पहना कर वापिस भेजने की कथा तो कई रचनाओं की विषय-वस्तु बनी हुई है। मुसलमान शत्रु की युवा बहू को देखकर उन्हें अपनी माता का स्मरण हो आया, ''यदि मेरी माता जी भी इतनी सुन्दर होती तो क्या होता?'' ऐसे उद्‌गार प्रकट करने के लिए उज्ज्वल चरित्र और स्वस्थ सौन्दर्य बोध चाहिये जो शिवाजी में पूर्णतया से था।

युद्ध में अथवा लूटपाट के समय मुसलमान या हिन्दू महिला के सामने पड़ने पर उन्हें कोई हानि नहीं होनी चाहिये, ये आदेश शिवाजी ने दे रखे थे। युद्ध में जाते समय हिन्दू और मुसलमान राजे-रजवाड़े नाचने-गाने वालियाँ आदि साथ ले जाते थे। दूसरे प्रदेश की महिलाओं को गुलाम बनाने और उन्हें अपवित्र करने का चलन आम था। ऐसे समय में यह कठोर निर्देश जारी किया गया कि युद्ध पर कूच करते समय दासियों या नाचने-गाने वालियों को साथ ले जाना मना है तथा किसी भी महिला को दासी बनाया जाना सहन नहीं किया जायेगा। (यह वर्णन जे. एन. सरकार द्वारा अंग्रेजी में लिखित शिवाजी और उनका कालखण्ड के पृष्ठ ३६५ पर अंकित है।) शिवाजी ने यथाशक्ति परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किये, परन्तु जहाँ तक उनके पारिवारिक जीवन का सम्बन्ध है, शिवाजी एक समय में बहुविवाह की प्रथा को न तोड़ सके। इसके अनेक कारण थे। यदि शिवाजी महाराज ने एक-पत्नीव्रत का पालन किया होता तो उनकी मृत्यु के पश्चात् छत्रपति का राजवंश घरेलू झगड़ों में न उलझता।

प्रजा की सम्पत्ति और शिवाजी- शिवाजी का प्रजा की सम्पत्ति से सम्बन्धित दृष्टिकोण भिन्न था। उस समय सेना जिधर से गुज़रती थी, वहाँ पर परिश्रम से उगाई हुई कृषि को उजाड़ देती थी। ऐसे युग में शिवाजी ने सेना को आदेश दिये कि किसी भी युद्ध के दौरान सेना की कोई भी टुकड़ी कृषक की खड़ी फसल में से न गुज़रे। उन्होंने आदेश दिया, ''प्रजा की सब्ज़ी के डण्ठल तक को हाथ लगाना सहन नहीं किया जायेगा। यदि सेना के घोड़ों के लिए दाना-पानी की आवश्यकता हो तो नकद राशि देकर खरीदा जाना चाहिये।'' (यह वर्णन पी.एन. देशपाण्डे द्वारा लिखित छत्रपति शिवाजी महाराज के पत्र के पृष्ठ संख्या ११७-११८ पर अंकित है।)

नौसेना खड़ी करने के काम में लकड़ी बहुत महत्त्वपूर्ण थी। उसके बिना नौसेना का लंगर डालना बहुत कठिन था। उस समय घने जंगल थे, वन की लकड़ी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी, परन्तु फिर भी यह आदेश दिया गया, ''स्वाधीन शासन में वर्तमान आम, कटहल के वृक्षों की लकड़ी उपयोगी है, परन्तु उन्हें हाथ न लगाने दिया जाये। कारण यह नहीं कि वृक्ष वर्ष दो वर्ष में तैयार होते हैं बल्कि इसके लिए प्रजा उनका सन्तान की तरह पालन-पोषण करती हैं और उनके काटने पर क्या उनके दु:ख की कोई सीमा होगी? हाँ, यदि कोई वृक्ष सूखकर ठूँठ बन गया हो तो भी उसके स्वामी को समझा-बुझाकर, उसका मूल्य चुका कर, उसे सन्तुष्ट करके

ही काटा जाना चाहिये।'' (यह वर्णन भी रामचन्द्र पन्त अमात्य द्वारा लिखित आज्ञा-पत्र जो कि श्री पी.एन. जोशी द्वारा सम्पादित है के पृष्ठ संख्या ४३,४४ पर अंकित है।)

प्रजा के सम्बन्ध में ऐसा अपनापन उस युग में किसी भी राजा या सामन्त द्वारा नहीं दिखलाया गया। प्रजा के प्रति राजा के ऐसे कार्य शिवाजी महाराज को सम्मानीय बना रहे थे तभी तो प्रजा अपने राजा शिवाजी महाराज के प्रत्येक कार्य में पूर्ण सहयोगी रही और उनकी निष्ठा निराली थी।

शिवाजी धर्मानुरागी थे, धर्म-विद्वेषी नहीं- शिवाजी का युद्ध धर्मयुद्ध था, धर्म शिवाजी के कार्य का प्रेरणास्रोत रहा। शिवाजी धर्म के लिए लड़े, इसीलिए विजयी हुए। शिवाजी के कार्य का आधार यदि धर्म न होता तो उनका विजयी होना असम्भव था।

शिवाजी हिन्दू थे। उनकी धर्म में अटूट आस्था थी। एक आस्थावान् व्यक्ति के अनुरूप उनका आचरण था। धर्म और मन्दिरों के लिए दान-दक्षिणा देते थे और उनका व्यय वहन किया करते थे। राज्य में जहाँ-जहाँ देवमन्दिर थे, शिवाजी वहाँ नित्य पूजा-पाठ इत्यादि का प्रबन्ध करते थे, परन्तु वह इस्लाम के विरोधी भी नहीं थे। मुसलमान पीरों के स्थानों और मस्जिदों में उनकी आस्था अनुसार नियमानुसार धन की सहायता देते थे। उन्होंने बाबा याकूत नाम के एक पीर को भक्तिपूर्वक अपने व्यय से केलशी नामक नगर में बसाकर भूमिदान दी थी। और उस याकूत बाबा को अपना गुरु मानते थे। उन्होंने अपने जीवन में किसी मस्जिद को न तोड़ा और न ही उसे मन्दिर के रूप में परिवर्तित किया। इतिहास में शिवाजी महाराज का मुस्लिम धर्म सम्बन्धी उदार भाव कई प्रकार से दर्ज है। मुस्लिम इतिहासकार शाफ़ीखान द्वारा लिखित निम्न उद्धरण स्वयं इनका प्रमाण हैं-

सेना के लिए शिवाजी ने कठोर नियम बनाये थे कि जहाँ-जहाँ सिपाहियों को लूट करने जाना हो, वहाँ-वहाँ मस्जिद, कुरान या किसी भी महिला को हानि या पीड़ा नहीं पहुँचनी चाहिये। यदि कुरान की प्रति मिलती तो नतमस्तक होकर उसे मुसलमान सेवक को सौंप देते थे। कभी भी हिन्दू या मुसलमान महिलायें हाथ आतीं और यदि उनकी सुरक्षा के लिए कोई उपलब्ध नहीं होता और उनको ले जाने के लिए जब तक उनके सम्बन्धी न आ जाते थे, उनकी रक्षा का दायित्व स्वयं संभालते थे।

शिवाजी स्वयं हिन्दू धर्मावलम्बी थे, परन्तु उन्होंने अपने राज्य के निवासियों का धर्म के आधार पर विभाजन नहीं किया और मुसलमानों से धर्म के आधार पर भिन्न व्यवहार नहीं किया।

वेद-प्रचार में सहयोग- प्रत्येक ग्राम के वेद-क्रिया में निपुण ब्राह्मणों के योगक्षेम के लिए विद्यावन्त, वेद-शास्त्र जानने वाले विद्वान् अनुष्ठानी, तपस्वी तथा सत्पुरुष ब्राह्मणों को चुन-चुनकर उनके परिवार की संख्या के अनुसार जितना अन्न-वस्त्र आवश्यक होता था, उसी के अनुकूल आय वाले महाल गाँव-गाँव में दिये जाते थे। प्रत्येक वर्ष सरकारी अधिकारी यह सहायता उनके यहाँ पहुँचाते थे। चिटनीस बखर ने लिखा है-

''लुप्त वेद-चर्चा शिवाजी के अनुग्रह से फिर जाग उठी। जो ब्राह्मण विद्यार्थी एक वेद कठस्थ करता था, उसे प्रत्येक वर्ष एक मन चावल, जो दो वेद कण्ठस्थ करता था, उसे दो मन, इस प्रकार दान होता था। प्रत्येक वर्ष उनके पण्डित राव श्रावण के मास में छात्रों की परीक्षा ले उनकी वृत्ति को घटा-बढ़ा देते थे। विदेशी पण्डितों को सामग्री और महाराष्ट्र के पण्डितों को खाने की वस्तुएँ दक्षिणा-स्वरूप दी जाती थीं। बड़े-बड़े पण्डितों को बुलाकर उनकी सभा करके उन्हें विदाई में नकद धन राशि दी जाती थी।''

अन्त समय की स्थिति- छत्रपति शिवाजी अपने बड़े पुत्र की दुश्चरिता और दुर्बुद्धि की बात सोचकर अपने राज्य और वंश के भविष्य के सम्बन्ध में बहुत हताश हो गये थे। अपनी मृत्यु के पश्चात् महाराष्ट्र राज्य की क्या दशा होगी, यह बात शिवाजी को स्पष्ट दिखाई दे रही थी। इसी चिन्ता ने उनकी आयु का ह्रास किया। उन्होंने अपना अन्त निकट देख लिया था और अपने निकट आये स्वजनों को कहा, ''जीवात्मा अविनाशी है। हम पृथ्वी पर फिर आयेंगे।'' यह कहकर चिरयात्रा को ३ अप्रैल १६८० को प्रस्थान कर गये। आर्यजाति के नवजीवनदाता कर्मक्षेत्र शून्य कर ५३ वर्ष की आयु में वीर वाञ्छित धाम को चले गये।

छत्रपति शिवाजी ने आत्मबलिदान द्वारा आर्य जाति के सामने विजय का सन्देश रखा। आज मित्र व शत्रु शिवाजी की राजनैतिक कुशलता और मौलिकता का सिक्का मान रहे हैं। शिवाजी भारतीय जनता के प्रेरणास्रोत बन गये हैं। हम उज्ज्वल चरित्र प्रस्तुत करने वाले उस महामानव को शत शत नमन करते हैं और उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिए हमें जनता की सेवा का व्रत धारण करना चाहिये।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ जनवरी २०२० तक)

१. श्री कौशलकिशोर पाण्डे, गाजियाबाद २. श्री तेजवीर सिंह, नई दिल्ली ३. श्रीमती वीणा त्यागी, नई दिल्ली ४. डॉ. एस. हैनिमी रेड्डी, नरसारावपेट, ५. श्री सुशील नवाल, अजमेर ६. श्री मनीष माहेश्वरी, अजमेर ७. श्री नवीन मिश्रा, अजमेर ८. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३१ जनवरी २०२० तक)

१. श्री के.पी. सिंह, नई दिल्ली २. श्री अभय राणा, नई दिल्ली ३. श्रीमती तारामणि आर्य, बैंगलोर ४. आर्यसमाज, वैशालीनगर, जयपुर ५. श्री गोवर्धनप्रसाद खण्डेलवाल, अजमेर ६.श्री सुरेश खण्डेलवाल, अजमेर ७. श्री महेश खण्डेलवाल, अजमेर ८. श्री संजय खण्डेलवाल, अजमेर ९. श्री अमरचन्द माहेश्वरी व श्रीमती कौशल्या माहेश्वरी, अजमेर १०. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु ११. श्री हरसहाय सिंह गंगवार, बरेली।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-संपादक**

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अतः 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ६ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का निःशुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के निःशुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अतः प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	५१०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,००,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

वर्ण-व्यवस्था गुण कर्म स्वभाव के अनुसार

वर्णव्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए। पहले भी छान्दोग्यउपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञात कुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे, अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वह ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसे ही आगे भी होगा। (स. प्र. स. ४)

गुण कर्म स्वभाव के अनुसार उत्तम व नीच वर्ण में गिनना

रजवीर्य के योग से ब्राह्मण शरीर नहीं होता। जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में अवश्य गिनना चाहिए। (स. प्र. स. ४)